ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार से शासन तक रूपांतरण: एक ऐतिहासिक और संस्थानिक विश्लेषण

1. प्रस्तावना और प्रारंभिक व्यापारिक विस्तार (1600–1750)

17वीं शताब्दी के प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी (EIC) की स्थापना विशुद्ध रूप से मर्केंटाइल (व्यापारिक) पूँजीवाद और वाणिज्यिक लाभ के संस्थागत तंत्र के रूप में हुई थी। एक निजी संयुक्त-स्टॉक कंपनी (Joint-Stock Company) के रूप में गठित, इस कॉर्पोरेट इकाई ने हिंद महासागर क्षेत्र में इबेरियाई (स्पेनिश और पुर्तगाली) एकाधिकार को चुनौती देते हुए अपनी रणनीतिक उपस्थिति स्थापित की। जोखिम भरे समुद्री अभियानों से आरंभ होकर, कंपनी ने व्यापारिक चौकियों और तटीय किलों का एक जटिल तंत्र निर्मित किया। यह प्रारंभिक वाणिज्यिक सुदृढ़ीकरण और औपनिवेशिक पूंजी का संचयन ही कालान्तर में मर्केंटाइल पूँजीवाद से औपनिवेशिक राज्य-तंत्र (Mercantile Capitalism to Colonial State Machinery) के रूप में रूपांतरित हुआ, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में राजनीतिक और प्रशासनिक प्रभुसत्ता का आधार तैयार किया।

1.1 ईआईसी का गठन और शाही चार्टर (1600)

ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए वैश्विक सामरिक परिवर्तनों का परिणाम थी।

- **ऐतिहासिक उत्प्रेरक और पूर्ववृत्त (Pre-1600 Catalysts):** 1577–1580 में सर फ्रांसिस ड्रेक ने 'गोल्डन हिंद' (Golden Hind) जहाज से विश्व की परिक्रमा की और मोलुकास (मसाला द्वीप) में टर्नेट के सुल्तान बाबुल्लाह से लौंग और जायफल की विशाल खेप प्राप्त की, जिस पर निवेशकों को 5,000 प्रतिशत का अभूतपूर्व रिटर्न मिला। तत्पश्चात, 1588 में स्पैनिश आर्मडा की पराजय ने अटलांटिक और हिंद महासागर में अंग्रेजी नौसैनिक अभियानों का मार्ग प्रशस्त किया। 1591–1594 में लेवेंट कंपनी द्वारा वित्तपोषित जेम्स लैंकेस्टर का अभियान भारत पहुँचने वाला पहला अंग्रेजी प्रयास बना। इसके अतिरिक्त, 13 अगस्त 1592 को फ्लोर्स की लड़ाई में सर वाल्टर रैले और अर्ल ऑफ कंबरलैंड द्वारा 1,600 टन के समृद्ध पुर्तगाली कैरैक 'माद्रे डी डेस' (Madre de Deus) की जब्ती ने अंग्रेजों को अकूत धन के साथ-साथ अत्यंत मूल्यवान 'रटर' (समुद्री मार्गदर्शिका व नौवहन मानचित्र पुस्तक) प्रदान की। साथ ही, 1583 से 1591 तक भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया की 9 वर्षीय भू-यात्रा करने वाले राल्फ फिच के प्रत्यक्ष विवरणों ने लंदन के व्यापारी वर्ग को प्रेरित किया।
- **संस्थापक और हितधारक प्रोफाइल:** 1599 में लंदन के प्रमुख व्यापारियों ने एक संयुक्त उद्यम का संकल्प लिया। इसके प्रमुख संस्थापकों में थॉमस स्मिथे (कंपनी के प्रथम गवर्नर), सर जेम्स लैंकेस्टर, जॉर्ज क्लिफोर्ड (अर्ल ऑफ कंबरलैंड), सर जॉन हर्ट, सर जॉन स्पेंसर (दोनों लंदन के पूर्व लॉर्ड मेयर), साहसी नाविक एडवर्ड माइकलबोर्न, रईस विलियम कैवेंडिश, स्टीफन सोमे (तत्कालीन लॉर्ड मेयर) और औपनिवेशिक विचारक रिचर्ड हाक्लुइट शामिल थे। शुरुआती दौर में £30,133 का प्रारंभिक कोष जुटाया गया, जिसे शीघ्र ही बढ़ाकर £68,373 कर दिया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **शाही एकाधिकार चार्टर (31 दिसंबर 1600):** महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने **'गवर्नर एंड कंपनी ऑफ मर्चेंट्स ऑफ लंदन ट्रेडिंग इनटू द ईस्ट-इंडीज'** (Governor and Company of Merchants of London Trading into the East-Indies) को 15 वर्षों के लिए शाही एकाधिकार चार्टर प्रदान किया। इस चार्टर ने केप ऑफ गुड होप के पूर्व से लेकर मैगलन जलडमरूमध्य के पश्चिम तक के सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी व्यापार पर कंपनी को सर्वाधिकार सौंपा। बिना लाइसेंस व्यापार करने वाले किसी भी अन्य अंग्रेजी व्यापारी के जहाज और माल जब्त करने तथा उन्हें कारावास में डालने का दंडात्मक अधिकार कंपनी को दिया गया।

- **प्रथम अभियान (1601):** सर जेम्स लैंकेस्टर ने 1601 में 'रेड ड्रैगन' (Red Dragon) जहाज पर सवार होकर कंपनी के प्रथम ईस्ट इंडीज अभियान का नेतृत्व किया। 1602 में मलक्का जलडमरूमध्य में लैंकेस्टर ने काली मिर्च और मसालों से लदे 1,200 टन के पुर्तगाली कैरैक 'साओ थोम' (Sao Thom) को जब्त कर लिया। इस वाणिज्यिक लूट के बल पर कंपनी ने जावा के बैंटम (Bantam) और मोलुकास में अपनी पहली व्यापारिक चौकियाँ ('फैक्ट्रियाँ') स्थापित कीं।

1.2 भारत में प्रवेश, स्वाली की लड़ाई और मुगल राजनयिक संबंध

- **प्रारंभिक प्रवेश और सूरत आगमन:** कंपनी का पहला जहाज 'हेक्टर' (कैप्टन विलियम हॉकिन्स के नेतृत्व में) 1608 में सूरत बंदरगाह पर पहुँचा। भारत में EIC की पहली व्यापारिक चौकी 1611 में कृष्णा-गोदावरी डेल्टा के मसूलीपट्टनम (आंध्र तट) में स्थापित की गई थी।

- **स्वाली की लड़ाई (1612) और सूरत फैक्ट्री:** 1612 में सूरत के तट पर स्वाली (Suvali) के नौसैनिक युद्ध में 'रेड ड्रैगन' के नेतृत्व वाले अंग्रेजी बेड़े ने पुर्तगाली नौसेना को पराजित कर दिया। इस सामरिक विजय से प्रभावित होकर मुगल स्थानीय प्रशासन ने अंग्रेजों की नौसैनिक क्षमता को स्वीकार किया, जिसके परिणामस्वरूप 1615 में सूरत में कंपनी की पहली स्थायी शाही मान्यता प्राप्त फैक्ट्री स्थापित हुई।

- **सर थॉमस रो का राजनयिक मिशन (1615–1618):** ब्रिटेन के सम्राट जेम्स प्रथम के राजदूत के रूप में सर थॉमस रो 1615 से 1618 तक मुगल सम्राट जहांगीर के दरबार (आगरा) में रहे। रो का मिशन अत्यधिक सफल रहा। जहांगीर ने जेम्स प्रथम को भेजे अपने शाही पत्र के माध्यम से अंग्रेजों को मुगल साम्राज्य के सभी बंदरगाहों और नगरों में बिना किसी हस्तक्षेप के स्वतंत्र रूप से रहने, व्यापार करने और कारखाने स्थापित करने के विशेषाधिकार प्रदान किए।

- **राजसी संरक्षण और कर-मुक्ति (1634 एवं 1717):** 1634 में मुगल सम्राट शाहजहाँ ने बंगाल क्षेत्र में अंग्रेजों को आतिथ्य एवं व्यापारिक छूट का विस्तार दिया। इसके उपरांत, 1717 में मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने एक शाही फरमान जारी कर बंगाल में 3,000 रुपये वार्षिक के निश्चित भुगतान के बदले कंपनी के व्यापार को सीमा शुल्क से पूरी तरह मुक्त कर दिया, जिसने EIC को स्थानीय और अन्य यूरोपीय प्रतिस्पर्धियों पर भारी वित्तीय बढ़त दिलाई।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

1.3 व्यापारिक वस्तुएँ, प्रतिस्पर्धी संघर्ष और प्रादेशिक किलेबंदी

कंपनी की वाणिज्यिक गतिविधियों ने वैश्विक व्यापार के संतुलन को गहराई से परिवर्तित किया और प्राचीन रोमन काल से चली आ रही पश्चिमी सराफा (बुलियन) की पूर्व की ओर निकासी की प्रवृत्ति को उलट दिया।

ईआईसी की मर्कैंटाइल व्यापारिक सारणी:

व्यापारिक वस्तु (Commodity)	विवरण एवं संस्थानिक-रणनीतिक महत्व (Details & Institutional Significance)
कपास और सूती वस्त्र (Cotton Textiles)	बंगाल, मद्रास और सूरत से भारतीय वस्त्रों का यूरोप में बड़े पैमाने पर निर्यात; स्थानीय उत्पादन श्रृंखला पर नियंत्रण।
रेशम (Raw Silk)	बंगाल प्रेसीडेंसी से कच्चे रेशम का आयात, जिसने यूरोपीय वस्त्र उद्योगों को कच्चा माल प्रदान किया।
इंडिगो / नील (Indigo Dye)	यूरोपीय टेक्सटाइल रंगाई उद्योग हेतु अति आवश्यक प्राकृतिक वर्णक।
शोरा / पोटैशियम नाइट्रेट (Saltpetre)	गनपाउडर (बारूद) निर्माण का मुख्य सामरिक कच्चा माल; बंगाल से निर्यात पर पूर्ण आधिपत्य।
चाय और चीनी (Tea & Sugar)	चीन और एशियाई व्यापार का मुख्य आधार; यूरोपीय उपभोक्ता संस्कृति का वित्तीय पुनर्गठन।
मसाले (Spices - Pepper & Nutmeg)	मोलुकास, बैंटम और मालाबार तट से आयातित काली मिर्च, लौंग और जायफल।
अफ़ीम और नमक (Opium & Salt)	भारत-चीन त्रिकोणीय व्यापार (Triangular Trade) का आधार तथा स्थानीय औपनिवेशिक राजस्व निष्कर्षण।

- **राजसत्तात्मक प्रभुसत्ता का हस्तांतरण (चार्ल्स द्वितीय के 1670 के अधिनियम):** ईस्ट इंडिया कंपनी के केवल व्यापारिक संस्था से एक कॉर्पोरेट राज्य के रूप में विकसित होने में सम्राट चार्ल्स द्वितीय द्वारा 1670 के आसपास पारित 5 शाही अधिनियमों की श्रृंखला सबसे महत्वपूर्ण संस्थानिक मील का पत्थर साबित हुई। इन अधिनियमों के तहत EIC को स्वायत्त रूप से क्षेत्र अधिग्रहित करने, सिक्के ढालने (Coining Money), सेना रखने व किलेबंदी करने, युद्ध और शांति की घोषणा करने तथा अधिग्रहित क्षेत्रों पर नागरिक व आपराधिक अधिकार क्षेत्र (Civil & Criminal Jurisdiction) का प्रयोग करने के पूर्ण प्रभुसत्तात्मक अधिकार प्रदान किए गए।
- **अंतर-कॉर्पोरेट प्रतिस्पर्धा और वस्त्र निर्यात रुझान:** EIC को डच ईस्ट इंडिया कंपनी (VOC) से तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। दोनों के बीच मसाला व्यापार और भारतीय वस्त्रों पर आधिपत्य

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

को लेकर चार एंग्लो-डच युद्ध (1652–1654, 1665–1667, 1672–1674 और 1780–1784) हुए। हालाँकि, 1720 के दशक के बाद बंगाल से EIC के सूती वस्त्र निर्यात में भारी वृद्धि हुई (1730–1734 के दौरान प्रति वर्ष 5,80,000 से अधिक थान), जिससे EIC ने डच VOC को पछाड़कर यूरोपीय बाजारों पर व्यापारिक वर्चस्व स्थापित कर लिया।

- **दास व्यापार में संस्थागत भागीदारी (1621–1834):** EIC के रिकॉर्ड दर्शाते हैं कि कंपनी 1621 से ही एशिया और अटलांटिक क्षेत्रों में दासों के क्रय-विक्रय और परिवहन में लिप्त थी। 1684 में कैप्टन रॉबर्ट नॉक्स को मेडागास्कर से 250 दासों को खरीदकर सेंट हेलेना ले जाने का औपचारिक आदेश दिया गया था। रॉयल नेवी के वेस्ट अफ्रीका स्क्वाड्रन और ब्रिटिश राज्य के कानूनी दबाव के बाद कंपनी ने अंततः 1834 में दास व्यापार समाप्त किया।
- **आंग्ल-मुगल संघर्ष और प्रादेशिक किलेबंदी:** 1689 में सिदी याकूब के नेतृत्व वाले मुगल बेड़े ने बॉम्बे पर घेराबंदी की। 1690 में EIC को औरंगज़ेब के समक्ष क्षमा याचना करनी पड़ी और भारी क्षतिपूर्ति देनी पड़ी। तत्पश्चात, स्थिति संभालते हुए कंपनी ने सामरिक सुरक्षा हेतु तीन प्रमुख प्रेसीडेंसी किलों की स्थापना की:
    - **फोर्ट सेंट जॉर्ज:** मद्रास (1639)
    - **बॉम्बे कैसल:** बॉम्बे (1668 में चार्ल्स द्वितीय द्वारा ब्रैगेंज़ा की कैथरीन से दहेज में प्राप्त बॉम्बे को कंपनी को सौंपने के बाद विकसित)
    - **फोर्ट विलियम:** कलकत्ता (1690 में जॉब चार्नॉक द्वारा उपस्थिति स्थापित करने के बाद निर्मित)

तटीय किलेबंदी, शाही संप्रभुता के हस्तांतरण और व्यापारिक स्वायत्तता के इस दौर ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भारतीय महाद्वीप के आंतरिक राजनीतिक और सैन्य मामलों में सीधे हस्तक्षेप करने का एक सशक्त आधार मंच प्रदान किया।

2. प्लासी का युद्ध (1757): भू-राजनीतिक कारक और सत्ता परिवर्तन

18वीं शताब्दी के मध्य तक मुगल साम्राज्य के विकेंद्रीकरण के साथ ही बंगाल प्रेसीडेंसी मर्केंटाइल गतिविधियों और राजस्व सृजन का सबसे समृद्ध केंद्र बन चुकी थी। नवाब के क्षेत्रीय संप्रभु अधिकारों और अपनी निजी सेना व किलेबंदी का विस्तार कर रही ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के कॉर्पोरेट हितों के बीच टकराव ने वाणिज्यिक प्रतिद्वंद्विता को सीधे भू-राजनीतिक और सैन्य संघर्ष में बदल दिया।

2.1 प्लासी के युद्ध के उत्प्रेरक और कारण

बंगाल के नए नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच बढ़ते अविश्वास और टकराव के पीछे वित्तीय-प्रशासनिक और संप्रभुता से जुड़े दो मुख्य उत्प्रेरक थे:

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1. **व्यापारिक विशेषाधिकारों (दस्तक) का दुरुपयोग एवं कर-चोरी:** मुगल फरमान द्वारा कंपनी को दिए गए मुफ़्त व्यापारिक पास (*दस्तक*) का अनुचित प्रयोग EIC के अधिकारी अपने निजी व्यापार के लिए कर रहे थे। इस व्यापक कर-वंचना ने बंगाल के स्थानीय वित्तीय ढांचे (Fiscal Architecture) को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिससे नवाब के खजाने को भारी क्षति हो रही थी।

2. **राजस्व निष्कर्षण बनाम नवाब की संप्रभुता:** कंपनी कर्मचारियों द्वारा स्थानीय चुंगी और कर चुकाने से इनकार करना केवल वित्तीय हानि नहीं थी, बल्कि यह नवाब की क्षेत्रीय संप्रभुता को प्रत्यक्ष चुनौती थी। नवाब के मना करने के बावजूद कलकत्ता में फोर्ट विलियम की सैन्य किलेबंदी जारी रखने और नवाब के विरोधियों को शरण देने ने सैन्य संघर्ष को अवश्यंभावी बना दिया।

2.2 23 जून 1757 की सैन्य भिड़ंत और राजनीतिक परिणाम

23 जून 1757 को भागीरथी नदी के तट पर प्लासी के मैदान में रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना का सामना नवाब सिराजुद्दौला और उनके फ्रांसीसी सहयोगियों की विशाल सेना से हुआ। क्लाइव द्वारा मीर जाफर और सेठ मानिकचंद के साथ रचे गए कूटनीतिक षड्यंत्र के कारण नवाब की मुख्य सेना निष्क्रिय रही और कंपनी ने एक सामरिक विजय प्राप्त की।

[दस्तक (व्यापारिक विशेषाधिकारों) का दुरुपयोग एवं राजस्व चोरी]

|

▼

[प्लासी का युद्ध (23 जून 1757)]

(रॉबर्ट क्लाइव बनाम सिराजुद्दौला व फ्रांसीसी सहयोगी)

|

▼

[दीर्घकालिक सामरिक एवं ऐतिहासिक प्रभाव: 'कंपनी राज' की स्थापना]

- **दीर्घकालिक सामरिक एवं ऐतिहासिक प्रभाव (Strategic & Historical Significance):** प्लासी की लड़ाई केवल एक सैन्य झड़प नहीं थी, बल्कि यह भारत में औपनिवेशिक राज्य-तंत्र के गठन का प्रस्थान बिंदु थी। युद्ध के परिणामस्वरूप मीर जाफर को कठपुतली नवाब बनाकर EIC ने बंगाल के खजाने और राजस्व संसाधनों पर सीधा आधिपत्य जमा लिया। इसने एक वाणिज्यिक निगम को क्षेत्रीय किंगमेकर और वास्तविक शासक के रूप में स्थापित किया, जिसने भारत में **'कंपनी राज' (1757–1858)** की औपचारिक शुरुआत की।

प्लासी की इस सामरिक सफलता ने कंपनी के लिए बंगाल के विशाल वित्तीय और सैन्य संसाधनों के द्वार खोल दिए, जिसे संस्थागत रूप देने का कार्य EIC के प्रशासनिक नेतृत्व ने किया।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

3. नेतृत्व का प्रभाव: रॉबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की भूमिका

व्यापारिक संस्था के औपनिवेशिक साम्राज्य में बदलने की प्रक्रिया में केवल संसदीय अधिनियमों का योगदान नहीं था, बल्कि व्यक्तिगत नेतृत्व की आक्रामक कूटनीति और प्रशासनिक पुनर्गठन का भी समान महत्व रहा।

3.1 रॉबर्ट क्लाइव का नेतृत्व और साम्राज्य की नींव

रॉबर्ट क्लाइव ने ईस्ट इंडिया कंपनी में 1744 में एक साधारण 'राइटर' (लिपिक) के रूप में अपने औपनिवेशिक करियर की शुरुआत की थी।

- **सैन्य व कूटनीतिक नेतृत्व:** अर्कट की घेराबंदी (1751) और प्लासी के युद्ध (1757) में अपनी सैन्य क्षमता का परिचय देकर क्लाइव बंगाल प्रेसीडेंसी के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर बने।
- **द्वैध शासन और प्रादेशिक नींव:** क्लाइव ने 1765 में इलाहाबाद की संधि के माध्यम से मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से बंगाल, बिहार और ओडिशा की 'दीवानी' (राजस्व एकत्र करने का अधिकार) प्राप्त की। क्लाइव द्वारा स्थापित 'द्वैध शासन' (Dual Government) ने कंपनी को बिना किसी उत्तरदायित्व के असीमित वित्तीय अधिकार प्रदान किए, जिसने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की सैन्य और राजनीतिक नींव रखी।

3.2 वारेन हेस्टिंग्स का प्रशासनिक काल (1772–1785)

यदि क्लाइव ने औपनिवेशिक साम्राज्य की सैन्य नींव रखी, तो वारेन हेस्टिंग्स ने उसे एक स्थायी प्रशासनिक और न्यायिक संस्थागत संरचना प्रदान की।

- **प्रशासनिक पुनर्गठन:** हेस्टिंग्स ने फोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी के गवर्नर और **रेगुलेटिंग एक्ट 1773** के तहत बंगाल के **प्रथम गवर्नर-जनरल** (1773–1785) के रूप में कार्य किया। उन्होंने क्लाइव के द्वैध शासन को समाप्त कर राजस्व संग्रह का सीधा नियंत्रण कंपनी के हाथों में ले लिया।
- **न्यायिक और वित्तीय संस्थागत ढांचा:** हेस्टिंग्स ने प्रत्येक जिले में दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना की, कलकत्ता में 'सदर दीवानी अदालत' की नींव रखी और राजस्व बोर्ड (Board of Revenue) का गठन किया।

संस्थागत तुलनात्मक संश्लेषण (Comparative Institutional Synthesis): क्लाइव का योगदान मुख्यतः सैन्य विजय, कूटनीतिक षड्यंत्र और साम्राज्य के प्रादेशिक विस्तार तक सीमित था, जबकि वारेन हेस्टिंग्स ने औपनिवेशिक राज्य के लिए आवश्यक न्यायिक, वित्तीय और नागरिक प्रशासनिक तंत्र का पुनर्गठन (Fiscal-Administrative Reorganization) किया। इन दोनों के संयुक्त प्रयासों से EIC एक अनियंत्रित मर्केंटाइल इकाई से एक सुसंगठित औपनिवेशिक सरकार की भांति कार्य करने लगी।

व्यक्तिगत नेतृत्व द्वारा निर्मित यह औपनिवेशिक ढांचा जल्द ही ब्रिटिश संसद के सीधे विधायी और संवैधानिक नियंत्रण के अधीन आ गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

4. व्यापारिक एकाधिकार से प्रशासनिक नियंत्रण: संस्थागत और विधायी विकास (1813–1858)

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही EIC के अधिकारियों के भ्रष्टाचार, वित्तीय अनियमितताओं और कंपनी की निजी सेना की विशाल होती शक्ति पर अंकुश लगाने के लिए ब्रिटिश संसद ने विधायी नियंत्रण बढ़ाना शुरू किया। इसके परिणामस्वरूप कंपनी का स्वरूप चरणबद्ध तरीके से व्यावसायिक निकाय से क्राउन के प्रशासनिक अंग में बदल गया।

4.1 संसदीय अधिनियम और व्यापारिक एकाधिकार की समाप्ति

ब्रिटिश संसद द्वारा पारित चार्टर अधिनियमों ने कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर उसे विशुद्ध रूप से एक प्रशासनिक निकाय में तब्दील कर दिया:

[चार्टर एक्ट 1813] —▶ भारत में EIC का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त (चाय व चीन व्यापार अपवाद)

|

▼

[चार्टर एक्ट 1833] —▶ चीन व चाय व्यापार एकाधिकार समाप्त —▶ पूर्णतः प्रशासनिक निकाय में रूपांतरण

- **चार्टर एक्ट 1813 (Charter Act 1813):** ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के प्रसार और मुफ़्त व्यापार (Free Trade) समर्थकों के दबाव के कारण इस अधिनियम द्वारा भारत के साथ EIC के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया। केवल चाय के व्यापार और चीन के साथ व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार बरकरार रखा गया।
- **चार्टर एक्ट 1833 (Charter Act 1833):** इस अधिनियम ने चीन के साथ व्यापार और चाय व्यापार के अंतिम एकाधिकार को भी पूरी तरह समाप्त कर दिया। इसके तहत EIC की सभी वाणिज्यिक और व्यावसायिक गतिविधियाँ पूरी तरह बंद कर दी गईं। कंपनी को एक विशुद्ध **प्रशासनिक निकाय (Administrative Body)** में बदल दिया गया, जो ब्रिटिश क्राउन के ट्रस्टी के रूप में भारत का शासन चलाती थी। भारत के गवर्नर-जनरल का पद सृजित कर संपूर्ण नागरिक व सैन्य अधिकार उन्हें सौंप दिए गए।

4.2 प्रेसीडेंसी सेनाएँ और सैन्य शक्ति का पैमाना

अपनी प्रशासनिक प्रभुसत्ता को बनाए रखने और क्षेत्रीय भारतीय राज्यों का दमन करने के लिए EIC ने एक अभूतपूर्व सैन्य बल का निर्माण किया।

- **सैन्य संरचना:** EIC की अपनी तीन प्रेसीडेंसी सेनाएँ थीं—बंगाल सेना, मद्रास सेना और बॉम्बे सेना।
- **सैन्य बल का पैमाना:** 19वीं शताब्दी के मध्य तक इन प्रेसीडेंसी सेनाओं में कुल सैनिकों की संख्या **2,60,000** तक पहुँच गई थी (जिसमें अधिकांश भारतीय सिपाही और ब्रिटिश अधिकारी शामिल थे)।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **संस्थानिक विश्लेषण:** यह निजी कॉर्पोरेट सैन्य बल उस समय की नियमित ब्रिटिश राष्ट्रीय सेना (Regular British Army) के कुल आकार से दोगुना था। विश्व इतिहास में यह एकमात्र उदाहरण था जहाँ एक व्यावसायिक शेयरधारक निगम के पास संप्रभु राज्यों को विस्थापित करने वाली इतनी विशाल सेना मौजूद थी।

व्यापारिक स्वरूप पूरी तरह खो चुकी यह प्रशासनिक कंपनी अपनी विशाल प्रेसीडेंसी सेना के बल पर शासन तो कर रही थी, लेकिन 1857 में एक ऐसा अभूतपूर्व संकट खड़ा हुआ जिसने इसके अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया।

5. निष्पादित समीक्षा और क्राउन शासन में संक्रमण (1858–1874)

1857 के व्यापक सशस्त्र विद्रोह ने कंपनी के प्रशासनिक कुप्रबंधन, वित्तीय शोषण और सैन्य असंतोष की सीमाओं को उजागर कर दिया। इस महासंकट ने ब्रिटिश सरकार को कॉर्पोरेट निकाय के माध्यम से शासन करने के प्रयोग को अंतिम रूप से समाप्त करने पर मजबूर किया।

5.1 1857 का भारतीय विद्रोह और भारत सरकार अधिनियम 1858

1857 का प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ईस्ट इंडिया कंपनी के औपनिवेशिक ढांचे के लिए घातक सिद्ध हुआ।

- **राजसत्तात्मक प्रभुसत्ता का सीधा हस्तांतरण:** विद्रोह का दमन करने के बाद ब्रिटिश संसद ने **'भारत सरकार अधिनियम 1858' (Government of India Act 1858)** पारित किया।
- इस अधिनियम के तहत भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर दिया गया और भारत की प्रभुसत्ता सीधे ब्रिटिश राजमुकुट (British Crown) को हस्तांतरित कर दी गई, जिसे **'ब्रिटिश राज' (British Raj)** कहा गया।
- भारत सचिव (Secretary of State for India) का नया पद सृजित किया गया। EIC की तीनों प्रेसीडेंसी सेनाओं और प्रशासनिक कर्मचारियों को सीधे ब्रिटिश क्राउन की शाही सेवा में समाहित कर लिया गया।

5.2 कंपनी का औपचारिक विघटन (1873–1874)

1858 के अधिनियम के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी केवल एक शक्तिहीन, निष्प्रभावी और अवशेष कागजी संस्था के रूप में जीवित रही।

- ब्रिटिश सरकार ने वित्तीय लेन-देन और शेयरधारकों के लाभांश को समाप्त करने हेतु **'ईस्ट इंडिया स्टॉक डिविडेंड रिडेम्पशन एक्ट 1873'** (East India Stock Dividend Redemption Act 1873) पारित किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- 1 जून 1874 को ईस्ट इंडिया कंपनी को औपचारिक रूप से भंग (Dissolved) कर दिया गया, जिसके साथ ही 274 वर्षों के इस ऐतिहासिक कॉर्पोरेट अस्तित्व का अंत हो गया।

5.3 मुख्य सीख और निष्कर्ष

1600 से 1874 तक ईस्ट इंडिया कंपनी के मर्केंटाइल इकाई से औपनिवेशिक राज्य-तंत्र में रूपांतरण से निम्नलिखित तीन मुख्य संस्थानिक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:

- **मर्केंटाइलिज्म से औपनिवेशिक राज्य-तंत्र का रूपांतरण:** EIC का इतिहास यह रेखांकित करता है कि कैसे 17वीं शताब्दी की एक एकाधिकारवादी व्यापारिक संयुक्त-स्टॉक कंपनी ने तटीय किलों, शाही विशेषाधिकारों और वैश्विक व्यापार (सूती वस्त्र, शोरा, चाय, अफीम) के पूंजी संचयन के बल पर खुद को एक क्षेत्रीय संप्रभु राज्य में परिवर्तित कर लिया।
- **कॉर्पोरेट सैन्य शक्ति और राजसत्तात्मक प्रभुसत्ता:** 2,60,000 सैनिकों की निजी प्रेसीडेंसी सेनाएं रखकर (जो ब्रिटेन की अपनी राष्ट्रीय सेना से दोगुनी थीं) कंपनी ने यह सिद्ध किया कि कॉर्पोरेट संस्थाएं जब सैन्य बल से लैस होती हैं, तो वे संप्रभु देशी राज्यों का विस्थापन कर अपने वाणिज्यिक हितों के अनुकूल राज्य-तंत्र स्थापित कर सकती हैं।
- **संस्थानिक विफलता और राजकीय अधिग्रहण:** वाणिज्यिक लाभ (Corporate Profit) और सार्वजनिक शासन (Governance) का अनैतिक मिश्रण—जैसा कि 'दस्तक' के दुरुपयोग, कर-वंचना और अत्यधिक राजस्व निष्कर्षण में दिखा—अंततः व्यापक असंतोष और 1857 के जन-विद्रोह का कारण बना। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश क्राउन को हस्तक्षेप करके कंपनी को समाप्त करना पड़ा और प्रत्यक्ष औपनिवेशिक राज्य की स्थापना करनी पड़ी।

लंदन के नैग्स हेड इन से शुरू होकर भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल भूभाग पर शासन करने वाली ईस्ट इंडिया कंपनी का यह ऐतिहासिक रूपांतरण विश्व इतिहास में कॉर्पोरेट शक्ति, मर्केंटाइल पूँजीवाद और औपनिवेशिक प्रभुत्व का सबसे असाधारण और विनाशकारी उदाहरण प्रस्तुत करता है।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

<u>प्लासी एवं बक्सर के युद्ध और अंग्रेजी काल</u>

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: अठारहवीं सदी का भारत और बंगाल

अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत के राजनीतिक इतिहास में एक युगांतकारी परिवर्तन का साक्षी रहा। सन् 1707 में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् केंद्रीय सत्ता का ढांचा चरमराने लगा। दिल्ली सल्तनत

की दुर्बलता का लाभ उठाकर प्रांतीय सूबेदारों ने अपनी स्वायत्तता घोषित कर दी। इसी क्रम में मुर्शिद कुली ख़ाँ के नेतृत्व में बंगाल एक स्वतंत्र रियासत के रूप में उभरा।

उस समय बंगाल—जिसमें वर्तमान पश्चिम बंगाल, बांग्लादेश, बिहार और ओडिशा के भूभाग सम्मिलित थे—मुग़ल साम्राज्य का सबसे समृद्ध और साधन-संपन्न सूबा था। अपनी उपजाऊ कृषि भूमि, रेशम, सूती वस्त्र, शोरा (Saltpetre), अफ़ीम और व्यापक नौपरिवहन प्रणाली के कारण बंगाल को 'भारत का स्वर्ग' कहा जाता था। इसी संपन्नता ने यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों—विशेषकर डच, फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ों—को अपनी ओर आकर्षित किया।

1600 ईस्वी में महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम के शाही फरमान से स्थापित 'इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी' आरंभ में केवल एक व्यापारिक संस्था थी। 1717 ईस्वी में मुग़ल बादशाह फ़र्रुख़सियर द्वारा जारी एक शाही फरमान ने कंपनी को बंगाल में बिना सीमा शुल्क दिए व्यापार करने की भारी छूट प्रदान की, जिसे **'दस्तक' (Dastak)** कहा जाता था। समय बीतने के साथ यह व्यापारिक छूट बंगाल के नवाबों और कंपनी के मध्य गंभीर राजनीतिक और आर्थिक संघर्ष की जड़ बन गई।

2. प्लासी का युद्ध (23 जून 1757)

पृष्ठभूमि और संघर्ष के प्रमुख कारण

1756 में नवाब अलीवर्दी ख़ाँ के देहांत के पश्चात् उनका युवा और महत्त्वाकांक्षी दौहित्र (नाती) **सिराजुद्दौला** बंगाल का नवाब बना। उसके गद्दी संभालते ही दरबार में आंतरिक कलह और षड्यंत्र प्रारंभ हो गए। नवाब और ईस्ट इंडिया कंपनी के मध्य तनाव के मुख्य कारण निम्नलिखित थे:

- **दस्तक का खुला दुरुपयोग:** कंपनी के अधिकारी मुग़ल फरमान से प्राप्त दस्तक का प्रयोग निजी व्यापार के लिए भी करने लगे, जिससे वे सीमा शुल्क चुकाने से बच जाते थे। इससे बंगाल के राजकोष को भारी क्षति पहुंच रही थी और स्थानीय भारतीय व्यापारियों के लिए अनुचित प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी।

- **कोलकाता की अनधिकृत किलेबंदी:** यूरोप में संभावित 'सप्तवर्षीय युद्ध' (Seven Years' War) की आशंका को देखते हुए अंग्रेज़ों ने नवाब की पूर्व अनुमति लिए बिना कोलकाता स्थित फोर्ट विलियम की किलेबंदी शुरू कर दी। सिराजुद्दौला ने इसे अपनी संप्रभुता पर सीधा प्रहार माना और निर्माण रोकने का आदेश दिया। अंग्रेज़ों ने इस आदेश की अवहेलना की।

- **नवाब के शत्रुओं को शरण:** नवाब के विद्रोही अधिकारी कृष्णदास (ढाका के दीवान राजवल्लभ के पुत्र) को कंपनी ने संपत्ति सहित कोलकाता में राजनीतिक शरण प्रदान की, जिससे सिराजुद्दौला अत्यधिक क्षुब्ध हुआ।

- **फोर्ट विलियम पर अधिकार व 'कालकोठरी' (ब्लैक होल) की घटना:** नवाब ने जून 1756 में त्वरित सैन्य कार्रवाई करते हुए अंग्रेज़ों की कासिमबाज़ार फैक्ट्री और फोर्ट विलियम पर क़ब्ज़ा कर लिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इसी दौरान 20 जून 1756 की तथाकथित 'ब्लैक होल त्रासदी' की घटना घटी, जिसका विवरण ब्रिटिश अधिकारी जे. ज़ेड. हॉलबेल ने दिया। हॉलबेल के अनुसार 146 अंग्रेज़ बंदियों को एक अत्यंत छोटी कोठरी में बंद कर दिया गया था, जिसमें दम घुटने से 123 की मृत्यु हो गई। आधुनिक इतिहासकार इस संख्या को संदेहास्पद और अंग्रेज़ों द्वारा सैन्य हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराने के लिए गढ़ा गया अतिरंजित प्रचार मानते हैं।

क्लाइव का षड्यंत्र

कोलकाता के पतन का समाचार मिलते ही मद्रास से **रॉबर्ट क्लाइव** और एडमिरल वॉटसन के नेतृत्व में एक विशाल सेना बंगाल भेजी गई। जनवरी 1757 में अंग्रेज़ों ने कोलकाता पर पुनः अधिकार कर लिया और नवाब को अपमानजनक 'अलीनगर की संधि' (फरवरी 1757) पर हस्ताक्षर करने को विवश किया।

क्लाइव सैन्य बल के स्थान पर कूटनीतिक विश्वासघात के माध्यम से बंगाल पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। उसने नवाब के असंतुष्ट दरबारियों के साथ मिलकर एक गुप्त षड्यंत्र रचा:

- **मीर जाफ़र:** नवाब का प्रधान सेनापति (मीर बख़्शी), जिसे बंगाल का नवाब बनाने का लोभ दिया गया।
- **राय दुर्लभ:** नवाब का दीवान और सेनापति।
- **जगत सेठ (महताब राय व स्वरूप चंद):** बंगाल का सबसे धनी महाजन एवं साहूकार घराना।
- **अमीचंद:** एक धनी और चालाक बिचौलिया व्यापारी।

युद्ध का घटनाक्रम और प्रकृति

23 जून 1757 को नदिया ज़िले में भागीरथी नदी के तट पर स्थित **प्लासी** के आम्रकुंज (Mango Grove) में दोनों सेनाएं आमने-सामने हुईं।

- **सैन्य संतुलन:** नवाब के पास लगभग 50,000 की विशाल सेना (जिसमें 35,000 पैदल सैनिक और 15,000 घुड़सवार थे) और 53 भारी तोपें थीं। दूसरी ओर, क्लाइव के पास मात्र 3,000 सैनिक थे, जिनमें लगभग 950 यूरोपीय और शेष भारतीय सिपाही थे।
- **रणभूमि में विश्वासघात:** युद्ध आरंभ होते ही मीर मदान और मोहन लाल के अधीन नवाब के एक छोटे दस्ते और फ़्रांसीसी तोपचियों ने अंग्रेज़ों पर भीषण हमला किया। इसी बीच एक तोप के गोले से वीर सेनापति मीर मदान मारा गया।
- युद्ध के निर्णायक मोड़ पर सिराजुद्दौला ने अपने प्रधान सेनापति मीर जाफ़र से परामर्श मांगा। विश्वासघाती मीर जाफ़र ने नवाब को युद्ध रोककर छावनी में लौटने और अगले दिन लड़ने की झूठी सलाह दी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- जैसे ही नवाब के आदेश पर सैनिक वापस मुड़े, क्लाइव की सेना ने हमला बोल दिया। मीर जाफ़र और राय दुर्लभ के विशाल सैन्य प्रभाग मूकदर्शक बने रहे।
- सिराजुद्दौला जान बचाकर मुर्शिदाबाद की ओर भागा, किंतु बाद में मीर जाफ़र के पुत्र मीरन के आदेश पर मोहम्मद बेग ने उसकी निर्मम हत्या कर दी।

प्लासी वास्तव में कोई पूर्ण सैन्य युद्ध नहीं था; यह क्लाइव का एक कूटनीतिक षड्यंत्र और धोखा था। इतिहासकार मैकाले ने ठीक ही लिखा था कि "क्लाइव ने केवल विश्वासघातियों की सहायता से एक साम्राज्य खरीद लिया।"

3. मध्यवर्ती काल (1757–1764): कठपुतली नवाब और शोषण

प्लासी के पश्चात् ईस्ट इंडिया कंपनी ने **मीर जाफ़र** को बंगाल की गद्दी पर बैठाया। बदले में कंपनी को 24 परगना की ज़मींदारी मिली और नवाब ने क्लाइव तथा कंपनी के अधिकारियों को करोड़ों रुपयों का उपहार व हर्जाना दिया।

मीर जाफ़र से मीर क़ासिम तक

जल्द ही कंपनी की अंतहीन धन-पिपासा के आगे मीर जाफ़र का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया। जब उसने कंपनी की अतिरिक्त मांगों को पूरा करने में असमर्थता जताई, तो अंग्रेज़ों ने 1760 में उसे गद्दी से उतारकर उसके दामाद **मीर क़ासिम** को बंगाल का नवाब बना दिया। मीर क़ासिम ने अंग्रेज़ों को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव के ज़िले सौंप दिए।

मीर क़ासिम के सुधार और टकराव

मीर क़ासिम पूर्ववर्ती नवाबों की भांति अकर्मण्य कठपुतली नहीं था। वह एक योग्य, दृढ़निश्चयी और प्रशासनिक समझ रखने वाला शासक था:

1. **राजधानी परिवर्तन:** कंपनी के कोलकाता स्थित षड्यंत्रों और जासूसी से दूर रहने के लिए उसने राजधानी मुर्शिदाबाद से हटाकर **मुंगेर (बिहार)** स्थानांतरित की।
2. **सैन्य आधुनिकीकरण:** मुंगेर में तोपों और बंदूक़ों के निर्माण का कारखाना स्थापित किया और अपनी सेना को यूरोपीय पद्धति पर प्रशिक्षित करना प्रारंभ किया।
3. **आर्थिक सुधार और दस्तक का अंत:** अंग्रेज़ व्यापारी दस्तक का दुरुपयोग कर स्थानीय व्यापारियों को बर्बाद कर रहे थे। जब कंपनी ने नवाब की चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया, तो मीर क़ासिम ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया—उसने **भारतीय व्यापारियों पर से भी सभी प्रकार के आंतरिक व्यापार कर पूरी तरह हटा दिए**।

इस निर्णय से अंग्रेज़ों का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त हो गया और वे भारतीय व्यापारियों के समकक्ष आ गए। अंग्रेज़ अधिकारी इसे अपनी शक्ति पर आघात मानकर भड़क उठे। 1763 में कंपनी ने मीर क़ासिम के

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। कटवा, गिरिया और उदयनाला के युद्धों में पराजित होकर मीर क़ासिम अवध की ओर भाग गया। कंपनी ने पुनः वृद्ध मीर जाफ़र को बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया।

4. बक्सर का युद्ध (22 अक्टूबर 1764)

त्रिगुट (Tripartite Alliance) का निर्माण

अवध पहुंचकर मीर क़ासिम ने भारत से विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए एक संयुक्त मोर्चा बनाया। इस गठबंधन में तीन प्रमुख शक्तियां शामिल थीं:

1. **मीर क़ासिम:** बंगाल का अपदस्थ नवाब (जिसके पास संगठित सैनिक और मुंगेर का शेष ख़ज़ाना था)।
2. **शुजाउद्दौला:** अवध का नवाब और मुग़ल साम्राज्य का वज़ीर।
3. **शाहआलम द्वितीय:** मुग़ल बादशाह, जो उस समय दिल्ली की उथल-पुथल से भागकर अवध में शरण लिए हुए था।

इस संयुक्त मोर्चे का उद्देश्य बंगाल से अंग्रेज़ों को निष्कासित कर पारंपरिक मुग़ल सत्ता की पुनर्स्थापना करना था।

युद्ध का घटनाक्रम

अक्टूबर 1764 में पटना से लगभग 130 किलोमीटर पश्चिम में गंगा और कर्मनाशा नदियों के समीप **बक्सर** के मैदान में ऐतिहासिक टकराव हुआ।

पक्ष	सेनापति	अनुमानित सैन्य क्षमता
ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी	मेजर हेक्टर मुनरो	लगभग 7,072 सैनिक (857 यूरोपीय, शेष अनुशासित भारतीय सिपाही)
संयुक्त भारतीय मोर्चा	शुजाउद्दौला, मीर क़ासिम, शाहआलम द्वितीय	लगभग 40,000 से 50,000 सैनिक

- **रणनीतिक अंतर:** संख्याबल में संयुक्त मोर्चा अंग्रेज़ों से कई गुना बड़ा था, किंतु उनमें आंतरिक समन्वय, साझा कमान और स्पष्ट रणनीति का पूर्ण अभाव था। शुजाउद्दौला और मीर क़ासिम में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **सैन्य अनुशासन की विजय:** हेक्टर मुनरो ने अत्यंत सुनियोजित रणनीति और आधुनिक तोपखाने के कुशल संयोजन से मोर्चा संभाला। अंग्रेज़ सैनिकों का कठोर अनुशासन और तीव्र गति से गोलियां दागने की क्षमता संयुक्त मोर्चे की अव्यवस्थित भीड़ पर भारी पड़ी।
- युद्ध के कुछ ही घंटों में संयुक्त सेना बिखर गई। मीर क़ासिम रणभूमि से भाग निकला (जो बाद में 1777 में दिल्ली के निकट अत्यंत निर्धनता में मरा)। शाहआलम द्वितीय ने अंग्रेज़ों के शिविर में शरण ली और शुजाउद्दौला ने कुछ समय बाद आत्मसमर्पण कर दिया।

5. दोनों युद्धों का तुलनात्मक अध्ययन

तुलनात्मक आयाम	**प्लासी का युद्ध (1757)**	**बक्सर का युद्ध (1764)**
युद्ध की मूल प्रकृति	यह वस्तुतः एक षड्यंत्र, विश्वासघात और कूटनीतिक चाल थी; पूर्ण सैन्य संघर्ष नहीं।	यह दो सेनाओं के बीच आमने-सामने लड़ा गया एक वास्तविक और भीषण सैन्य युद्ध था।
प्रतिद्वंद्वी	केवल बंगाल का एक युवा और अलग-थलग पड़ा नवाब (सिराजुद्दौला)।	उत्तर भारत की तीन सर्वोच्च शक्तियों का संयुक्त मोर्चा (मुग़ल बादशाह, अवध का नवाब, बंगाल का पूर्व नवाब)।
सैन्य नेतृत्व	रॉबर्ट क्लाइव (कूटनीति और गुप्त संधियों पर अधिक निर्भर)।	मेजर हेक्टर मुनरो (सैन्य अनुशासन, व्यूहरचना और आधुनिक तोपखाने का श्रेष्ठ प्रदर्शन)।
राजनीतिक प्रभाव	कंपनी बंगाल की राजनीति में केवल 'किंगमेकर' (सत्ता-निर्माता) बनी।	कंपनी सीधे तौर पर उत्तर भारत की सर्वोच्च राजनीतिक व सैन्य शक्ति बनकर उभरी।
वैधानिकता	इसे मुग़ल सम्राट द्वारा कोई औपचारिक या वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं थी।	इलाहाबाद की संधि के ज़रिए मुग़ल सम्राट से प्रत्यक्ष वैधानिक संप्रभुता और दीवानी अधिकार प्राप्त हुए।

6. ऐतिहासिक और दूरगामी परिणाम

इलाहाबाद की संधि (अगस्त 1765)

बक्सर की विजय के बाद रॉबर्ट क्लाइव को पुनः गवर्नर बनाकर बंगाल भेजा गया। उसने पराजित शासकों के साथ दो पृथक संधियां कीं:

- **मुग़ल सम्राट शाहआलम द्वितीय के साथ संधि (12 अगस्त 1765):**
    - मुग़ल बादशाह ने एक शाही फरमान द्वारा कंपनी को **बंगाल, बिहार और ओडिशा की 'दीवानी' (राजस्व वसूलने का अधिकार)** स्थायी रूप से सौंप दी।
    - बदले में कंपनी ने बादशाह को ₹26 लाख की वार्षिक पेंशन देना स्वीकार किया।
    - कड़ा और इलाहाबाद के ज़िले अवध के नवाब से छीनकर बादशाह को दिए गए।
- **अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ संधि (16 अगस्त 1765):**

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- अवध के नवाब पर ₹50 लाख का युद्ध हर्जाना थोपा गया।
- अवध की सीमाओं की रक्षा के नाम पर वहां एक ब्रिटिश सेना तैनात की गई, जिसका संपूर्ण ख़र्च नवाब को उठाना था। इस प्रकार अवध को अंग्रेज़ों ने मराठों के विरुद्ध एक 'बफ़र स्टेट' (मध्यवर्ती राज्य) बना दिया।

बंगाल में द्वैध शासन प्रणाली (Dual Government: 1765–1772)

क्लाइव ने बंगाल में शासन की एक अनोखी व्यवस्था लागू की, जिसे 'द्वैध शासन' कहा गया। इसके अंतर्गत प्रशासन को दो भागों में विभक्त कर दिया गया:

- **दीवानी अधिकार (राजस्व संग्रह और दीवानी न्याय):** यह पूर्णतः कंपनी के नियंत्रण में आ गया।
- **निज़ामत अधिकार (प्रशासनिक कानून-व्यवस्था, सुरक्षा और फ़ौजदारी न्याय):** यह ज़िम्मेदारी नवाब के पास छोड़ दी गई, जिसके लिए उसे अल्प बजट दिया जाता था।

इस व्यवस्था का सार था—**'उत्तरदायित्व विहीन अधिकार'** (कंपनी के पास समस्त शक्तियां और धन था, किंतु जनता के प्रति कोई जवाबदेही नहीं) और **'अधिकार विहीन उत्तरदायित्व'** (नवाब के पास शासन चलाने की ज़िम्मेदारी थी, किंतु न तो साधन थे और न ही सैन्य शक्ति)।

आर्थिक दोहन और 1770 का भीषण अकाल

दीवानी मिलते ही कंपनी ने अधिकतम मालगुज़ारी वसूलने के लिए करों में भारी वृद्धि कर दी। बंगाल का धन सीधे लंदन भेजा जाने लगा, जिसे अर्थशास्त्रियों ने **'धन की निकासी' (Drain of Wealth)** कहा। कृषि और बुनकर उद्योग चौपट हो गए। इसी प्रशासनिक अराजकता और लालच का परिणाम था **1770 का बंगाल का भीषण अकाल**, जिसमें बंगाल की कुल जनसंख्या का लगभग एक-तिहाई भाग (लगभग एक करोड़ लोग) भुखमरी की भेंट चढ़ गया। इसके बावजूद कंपनी ने कर वसूली में कोई रियायत नहीं दी।

7. निष्कर्ष: एक व्यापारिक कंपनी से औपनिवेशिक साम्राज्य तक

प्लासी और बक्सर के युद्ध केवल दो लड़ाइयों की गाथा नहीं हैं, बल्कि यह भारत के मध्यकाल से औपनिवेशिक पराधीनता की ओर संक्रमण का वाटरशेड (निर्णायक मोड़) थे।

प्लासी ने ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए बंगाल का द्वार खोला और उसे व्यापारिक संस्था से एक राजनीतिक शक्ति में बदला। किंतु उस समय भी अंग्रेज़ों का नियंत्रण अप्रत्यक्ष और अस्थिर था। बक्सर के युद्ध ने प्लासी के अधूरे कार्य को पूर्ण कर दिया। इसने यह सिद्ध कर दिया कि मुग़ल सम्राट और उसके प्रमुख सूबेदारों की सामूहिक सैन्य शक्ति भी संगठित यूरोपीय अनुशासन के सामने टिकने में अक्षम थी।

इलाहाबाद की संधि ने अंग्रेज़ों को भारत के सबसे अमीर प्रांत के अकूत वित्तीय संसाधनों की चाबी सौंप दी। इसी बंगाल के धन और यहां से तैयार की गई भारतीय सैनिकों की विशाल सेना के बल पर अंग्रेज़ों ने आगामी सौ वर्षों में मराठों, मैसूर के सुल्तानों, निज़ाम और सिखों को एक-एक कर पराजित किया। संक्षेप

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

में, प्लासी ने यदि ब्रिटिश साम्राज्य के बीज बोए, तो बक्सर ने उसे सींचकर भारत में ब्रिटिश राज की एक सुदृढ़ और विशाल इमारत के रूप में स्थापित कर दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

औपनिवेशिक शासन के तहत आर्थिक परिवर्तन-स्थायी बंदोबस्त, रैयतवारी और महालवारी , कृषि का व्यावसायीकरण और कर्ज वन नीति।

1. प्रस्तावना: औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का स्वरूप एवं उद्देश्य

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में प्लासी (1757) और बक्सर (1764) के युद्धों के उपरांत ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपनी राजनीतिक प्रभुसत्ता स्थापित की। इस राजनीतिक विजय ने एक विशुद्ध व्यापारिक निगम को एक विशाल साम्राज्य के प्रशासक में तब्दील कर दिया। कंपनी के शासन का मूल ध्येय कभी भी भारतीय प्रजा का कल्याण नहीं था; उसका एकमात्र उद्देश्य था—ब्रिटिश साम्राज्य और मातृदेश (Britain) के आर्थिक हितों की पूर्ति करना।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पाम दत्त ने अपनी कृति *'इंडिया टुडे' (India Today)* में भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण को तीन मुख्य चरणों में विभाजित किया है:

1. **व्यापारिक पूंजीवाद (Mercantile Phase, 1757–1813):**

इस चरण में कंपनी ने प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण और दीवानी अधिकारों का उपयोग करके बंगाल के राजस्व से ही भारतीय वस्तुएं खरीदीं और उन्हें यूरोप में ऊंचे दामों पर बेचा। इसे "राजस्व के माध्यम से व्यापार" कहा गया, जिसने भारत के पारंपरिक व्यापारिक संतुलन को उलट दिया।

2. **औद्योगिक पूंजीवाद (Industrial Phase, 1813–1858):**

ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) के कारण ब्रिटिश पूंजीपतियों को अपने मैनचेस्टर और लंकाशायर के कारखानों के लिए कच्चे माल (कपास, जूट, नील) की आवश्यकता थी, साथ ही मशीनों से बने सस्ते तैयार माल को खपाने के लिए एक बड़े बाज़ार की। 1813 के चार्टर एक्ट के तहत कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया और भारत को एक "कच्चा माल निर्यातक" तथा "निर्मित माल आयातक" औपनिवेशिक उपभवन बना दिया गया।

3. **वित्तीय पूंजीवाद (Financial Capitalism, 1858 के बाद):**

इस चरण में ब्रिटिश अधिशेष पूंजी को भारत में रेलवे, चाय-कॉफ़ी के बागानों, नौवहन और सरकारी ऋणों में निवेश किया गया, जिस पर भारतीय राजस्व से निश्चित लाभांश (Guaranteed Interest) की गारंटी दी गई।

इस औपनिवेशिक रूपांतरण की धुरी थी—**भारतीय कृषि व्यवस्था**। भारत एक कृषि प्रधान देश था, जहां 80% से अधिक जनसंख्या आजीविका के लिए भूमि पर निर्भर थी। अतः ब्रिटिश शासकों ने राजस्व की अधिकतम वसूली और कच्चे माल की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए पारंपरिक भूमि संबंधों, उत्पादन प्रणालियों और वन संपदा का पूर्ण पुनर्गठन किया।

2. भू-राजस्व प्रणालियां: ब्रिटिश भारत में नए भूमि संबंध

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

पारंपरिक भारतीय ग्राम समुदाय बनाम औपनिवेशिक अवधारणा

पूर्व-औपनिवेशिक (मुग़ल एवं उससे पूर्व) भारत में भूमि निजी संपत्ति नहीं थी जिसे बेचा या खरीदा जा सके। भूमि पर समुदाय या किसान का पारंपरिक कृषक अधिकार (Occupancy Right) होता था, बशर्ते वह राज्य को उपज का एक निश्चित भाग (प्रायः एक-तिहाई से आधा) कर के रूप में देता रहे। यह कर वास्तविक उत्पादन पर आधारित होता था—यदि सूखा या बाढ़ आती थी, तो कर स्वतः माफ या कम कर दिया जाता था।

ब्रिटिश अधिकारियों ने पश्चिमी अवधारणाओं को भारत पर थोप दिया। उन्होंने भूमि को निजी, अहस्तांतरणीय से हस्तांतरणीय (Saleable & Mortgaged) संपत्ति में बदल दिया और लगान को वास्तविक उपज के स्थान पर 'भूमि के आकार एवं अनुमानित क्षमता' पर आधारित नकद देयता बना दिया।

(क) स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement)

पृष्ठभूमि एवं दार्शनिक आधार

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने 1793 में बंगाल, बिहार, ओडिशा, उत्तर प्रदेश के वाराणसी खंड और उत्तरी कर्नाटक में 'स्थायी बंदोबस्त' लागू किया। यह ब्रिटिश भारत के लगभग 19% भूभाग पर विस्तृत था।

वारेन हेस्टिंग्स की इजारेदारी प्रथा (पंचवर्षीय एवं एकवर्षीय नीलामी व्यवस्था) की विफलता और राजस्व में भारी उतार-चढ़ाव के बाद अंग्रेज़ एक ऐसी प्रणाली चाहते थे जो कंपनी को एक निश्चित, अनुमानित और नियमित आय प्रदान कर सके। इसके पीछे ब्रिटिश 'फिजियोक्रेट' (Physiocrat) विचारधारा और ब्रिटेन के जमींदार वर्ग (Landed Gentry) का मॉडल था। अंग्रेजों का मानना था कि यदि धनी ज़मींदारों को भूमि का स्थायी मालिक बना दिया जाए, तो वे भूमि सुधार में पूंजी निवेश करेंगे, ठीक वैसे ही जैसे इंग्लैंड के जमींदारों ने किया था।

प्रमुख विशेषताएं

- **ज़मींदार भूमि का स्वामी:** पारंपरिक रूप से जो ज़मींदार केवल कर संग्राहक (Tax Collector) थे, उन्हें भूमि का पूर्ण स्वामी (Proprietor) मान लिया गया।
- **निश्चित राजस्व:** राज्य की मांग को हमेशा के लिए स्थिर कर दिया गया। भविष्य में कृषि उत्पादन या भूमि मूल्य बढ़ने पर भी कर में कोई वृद्धि नहीं की जानी थी।
- **राजस्व विभाजन अनुपात:** ज़मींदार द्वारा वसूले गए कुल लगान का **10/11 भाग (लगभग 89%)** कंपनी को मिलना था और **1/11 भाग (लगभग 11%)** ज़मींदार अपने पारिश्रमिक के रूप में रख सकता था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **सूर्यास्त कानून (Sunset Law):** ज़मींदार को निश्चित तारीख को सूर्यास्त से पहले सरकारी खजाने में राजस्व जमा करना अनिवार्य था। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता, तो उसकी ज़मींदारी को नीलाम कर दिया जाता था।

[ईस्ट इंडिया कंपनी]

|

(10/11 भाग लगान)

▼

[ज़मींदार] —— (1/11 भाग) ——► [निजी लाभ / विलासिता]

|

(असीमित शोषण / बेदखली)

▼

[रैयत / वास्तविक किसान]

प्रभाव एवं दुष्परिणाम

1. **ज़मींदारों का विध्वंस और नीलामी:** शुरुआती वर्षों में कंपनी ने राजस्व की दर इतनी ऊंची तय की थी कि कई पारंपरिक ज़मींदार समय पर कर नहीं चुका सके। 1794 से 1807 के बीच बंगाल की आधी से अधिक ज़मींदारियां नीलाम हो गईं। कलकत्ता के सटोरियों, व्यापारियों और साहूकारों ने इन ज़मींदारियों को खरीद लिया, जिनका कृषि या ग्रामीणों से कोई भावनात्मक लगाव नहीं था।
2. **गैर-हाज़िर ज़मींदारी (Absentee Landlordism):** नए ज़मींदार शहरों में रहकर ऐशो-आराम की ज़िंदगी जीते थे और गांवों में एजेंटों (गोमाश्तों) के ज़रिए निर्मम तरीके से लगान वसूलते थे।
3. **उप-सामंतीकरण (Sub-infeudation):** ज़मींदारों ने राजस्व वसूली के अधिकार को कई स्तरों पर पट्टे (पटनी व्यवस्था) पर देना शुरू किया। इससे राज्य और किसान के बीच बिचौलियों की एक लंबी श्रृंखला (12 से 20 स्तर तक) तैयार हो गई, जिसका सारा बोझ अंततः वास्तविक किसान की पीठ पर पड़ा।
4. **किसानों की दुर्दशा:** रैयत अपनी ही पुश्तैनी ज़मीन पर महज़ असहाय काश्तकार या पट्टेदार बनकर रह गए। उन्हें ज़मींदार की दया पर छोड़ दिया गया, बेगार (मुफ्त श्रम) कराई गई और विभिन्न प्रकार के ग़ैर-क़ानूनी उपकर (आबवाब) वसूले गए।

(ख) रैयतवाड़ी प्रणाली (Ryotwari System)

पृष्ठभूमि एवं दार्शनिक आधार

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

स्थायी बंदोबस्त की कमियों को देखकर कंपनी के नीति-निर्माताओं ने मद्रास और बॉम्बे प्रेसीडेंसी में ज़मींदारों को मान्यता न देने का निर्णय लिया। 1820 के दशक में सर थॉमस मुनरो और कैप्टन अलेक्जेंडर रीड ने मद्रास प्रेसीडेंसी में और बाद में एलफिंस्टन ने बॉम्बे में रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू की। यह ब्रिटिश भारत के लगभग 51% भूभाग (मद्रास, बॉम्बे, पूर्वी बंगाल के कुछ हिस्से, असम और कुर्ग) पर लागू हुई।

इसके पीछे दार्शनिक कारण डेविड रिकार्डो का 'लगान सिद्धांत' (Ricardian Rent Theory) और जेरेमी बेंथम का 'उपयोगितावाद' (Utilitarianism) था। इसके अनुसार, ज़मींदार समाज के परजीवी हैं जो बिना किसी उत्पादन कार्य के अधिशेष हड़प लेते हैं। इसलिए राज्य को सीधे वास्तविक कृषक (रैयत) से संपर्क करना चाहिए ताकि बिचौलियों का लाभ राज्य के खजाने में आ सके।

प्रमुख विशेषताएं

- **प्रत्यक्ष संबंध:** राज्य और किसान (रैयत) के बीच कोई मध्यस्थ नहीं था। प्रत्येक पंजीकृत किसान को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया।
- **हस्तांतरणीय अधिकार:** किसान को भूमि बेचने, पट्टे पर देने या गिरवी रखने का कानूनी अधिकार दिया गया, जब तक कि वह नियमित रूप से लगान चुकाता रहे।
- **अस्थायी निर्धारण:** स्थायी बंदोबस्त के विपरीत, इसमें राजस्व हमेशा के लिए तय नहीं था। इसका पुनर्मूल्यांकन प्रत्येक 20 से 30 वर्ष के अंतराल पर किया जाता था।
- **अत्यधिक कर दरें:** राजस्व का निर्धारण सामान्यतः शुद्ध उपज के 50% से 60% के बराबर मनमाने ढंग से तय किया गया।

प्रभाव एवं दुष्परिणाम

1. **सरकार ही विशालकाय ज़मींदार बनी:** रैयतवाड़ी व्यवस्था ने बिचौलियों को तो समाप्त किया, किंतु स्वयं राज्य ही सबसे बड़ा और निर्मम ज़मींदार बन गया।
2. **भूमि का त्रुटिपूर्ण सर्वेक्षण:** राजस्व का निर्धारण भूमि की वास्तविक उत्पादन क्षमता के बजाय राजस्व अधिकारियों के मनमाने अनुमानों पर आधारित था। कई मामलों में कर वास्तविक उत्पादन से भी अधिक हो जाता था।
3. **कठोर वसूली और शारीरिक प्रताड़ना:** कर की वसूली इतनी अमानवीय थी कि मद्रास में किसानों को धूप में खड़ा करने, भारी पत्थर छाती पर रखने और कोड़े मारने जैसी यातनाएं दी जाती थीं। इसके विरोध में 1855 में ब्रिटिश संसद को 'मद्रास टॉर्चर कमीशन' (Madras Torture Commission) गठित करना पड़ा था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

4. **साहूकारों के जाल में फंसना:** चूंकि कर नकद में और निश्चित तिथि पर देना पड़ता था, सूखा पड़ने पर भी किसान लगान चुकाने के लिए स्थानीय साहूकारों (मारवाड़ी और चेट्टियार) से अत्यधिक ब्याज पर ऋण लेने को विवश हुए, जिसके परिणामस्वरूप अंततः उनकी भूमि छिन गई।

(ग) महालवाड़ी प्रणाली (Mahalwari System)

पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा

उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत में ग्राम समुदाय की जड़ें बहुत गहरी थीं। वहां गांव सामूहिक रूप से भूमि का प्रबंधन करते थे। अतः 1822 में होल्ट मैकेंज़ी ने एक नई प्रणाली का प्रारूप तैयार किया, जिसे 1833 में विलियम बेंटिंक के काल में मार्टिन्स बर्ड (जिन्हें उत्तर भारत में भू-राजस्व व्यवस्था का जनक कहा जाता है) द्वारा संशोधित रूप में लागू किया गया।

यह प्रणाली गंगा की घाटी, उत्तर-पश्चिमी प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश), मध्य भारत के कुछ हिस्सों और पंजाब में लागू की गई, जो ब्रिटिश भारत के लगभग 30% भूभाग को कवर करती थी।

प्रमुख विशेषताएं

- **महाल की इकाई:** राजस्व की बुनियादी इकाई कोई व्यक्ति या खेत नहीं, बल्कि पूरा गांव या 'महाल' (Estate) था।
- **संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility):** पूरे गांव के किसान संयुक्त और व्यक्तिगत रूप से राजस्व चुकाने के लिए उत्तरदायी थे। यदि कोई एक किसान लगान नहीं चुका पाता था, तो पूरे महाल को उसका भुगतान करना पड़ता था।
- **लंबरदार (ग्राम प्रधान):** सरकार और महाल के बीच एक मध्यस्थ के रूप में गांव के मुखिया या 'लंबरदार' को मान्यता दी गई, जो पूरे गांव का लगान एकत्र कर सरकारी खजाने में जमा करता था।
- **संशोधन योग्य दरें:** राजस्व की दरें 66% से लेकर बाद में 50% तक निर्धारित की गईं, जिनका समय-समय पर पुनरीक्षण होता था।

प्रभाव एवं दुष्परिणाम

1. **पारंपरिक ग्राम समुदाय का विघटन:** लंबरदार धीरे-धीरे शक्तिशाली बन गया और उसने साधारण किसानों के अधिकारों का हनन करना शुरू कर दिया।
2. **सामूहिक दंड:** किसी एक व्यक्ति की विफलता पर पूरे गांव की भूमि नीलाम कर दी जाती थी, जिससे सदियों पुराना ग्रामीण भाईचारा और सामाजिक ताना-बाना नष्ट हो गया।
3. **अदालती पेचीदगियां:** विस्तृत सर्वेक्षणों और नक्शों के बावजूद अभिलेखों में भ्रष्टाचार बढ़ा और विवादों के कारण किसान दीवानी अदालतों के चक्कर में बर्बाद हो गए।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

तीनों प्रणालियों का तुलनात्मक विश्लेषण

आधार	स्थायी बंदोबस्त (1793)	रैयतवाड़ी प्रणाली (1820)	महालवाड़ी प्रणाली (1833)
जनक / प्रवर्तक	लॉर्ड कॉर्नवालिस, जॉन शोर	थॉमस मुनरो, अलेक्जेंडर रीड	होल्ट मैकेंज़ी, मार्टिन्स बर्ड
भौगोलिक क्षेत्र	बंगाल, बिहार, ओडिशा, वाराणसी, उत्तरी कर्नाटक	मद्रास, बॉम्बे, असम, कुर्ग	उप्र, पंजाब, मध्य प्रांत
ब्रिटिश भारत का प्रतिशत	~19%	~51%	~30%
भूमि का स्वामी कौन?	ज़मींदार	किसान (रैयत)	संयुक्त रूप से ग्राम समाज (महाल)
राजस्व की प्रकृति	सदैव के लिए स्थिर (Permanent)	आवधिक पुनरीक्षण (20-30 वर्ष)	आवधिक पुनरीक्षण
राज्य की मांग का आधार	कुल लगान का 10/11 भाग राज्य को	शुद्ध उत्पादन का 50% से 60%	उपज का 50% से 66%
मुख्य परिणाम	गैर-हाज़िर ज़मींदारी, उप-सामंतीकरण	राज्य द्वारा शोषण, साहूकारों का उदय	ग्राम पंचायत का पतन, लंबरदार का दबदबा

3. कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialization of Agriculture)

'बाध्यकारी व्यावसायीकरण' (Forced Commercialization)

सामान्यतः पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में कृषि का व्यावसायीकरण बाजार की स्वाभाविक शक्तियों, परिवहन के साधनों और किसानों के लाभ कमाने की इच्छा से प्रेरित होता है। किंतु औपनिवेशिक भारत में यह प्रक्रिया स्वतःस्फूर्त न होकर **'ऊपर से थोपी गई और बाध्यकारी'** थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इतिहासकार बिपन चंद्र के शब्दों में: *"भारत में कृषि का व्यावसायीकरण भारतीय किसानों की समृद्धि के लिए नहीं, बल्कि ब्रिटिश उद्योगों की भूख मिटाने और औपनिवेशिक व्यापार घाटे को पाटने के लिए किया गया था।"*

किसान नकदी फसलें इसलिए नहीं उगाते थे कि उन्हें भारी मुनाफा हो रहा था, बल्कि इसलिए उगाते थे क्योंकि उन्हें:

1. निश्चित तिथि पर **नकद में भू-राजस्व** चुकाना था।
2. साहूकार का **ब्याज और मूलधन** अदा करना था।
3. ब्रिटिश विनिर्मित सामान खरीदने के लिए नकदी की आवश्यकता थी।

[नकद लगान और साहूकार का कर्ज़]

|

▼

[बाध्य होकर खाद्यान्न के स्थान पर नकदी फसलें उगाना]

|

▼

[अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में मूल्य-उतार-चढ़ाव का शिकार होना]

|

▼

[घाटा और खाद्यान्न की कमी —► भुखमरी एवं भीषण अकाल]

प्रमुख व्यावसायिक फसलें और शोषण का तंत्र

1. नील (Indigo)

ब्रिटेन के कपड़ा उद्योग में सूती वस्त्रों की रंगाई के लिए भारतीय नील की अत्यधिक मांग थी।

- **ददनी प्रथा (Advance System):** यूरोपीय नीलहे (Planters) किसानों को बुवाई से पूर्व नाममात्र का अग्रिम धन (ददनी) देते थे और उनसे एक अनुबंध पर हस्ताक्षर करवाते थे, जिसके तहत किसान को अपनी सबसे उपजाऊ ज़मीन के 3/20 भाग (तिनकठिया प्रणाली) पर नील उगाना अनिवार्य होता था।
- **हानि:** नील की खेती से भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती थी और उस पर दोबारा धान नहीं उगाया जा सकता था। नीलहों द्वारा तय की गई कीमत उत्पादन लागत से भी कम होती थी। किसानों को पीटा जाता था, उनके घर जला दिए जाते थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **परिणाम:** इस बर्बर शोषण के विरुद्ध 1859-60 में बंगाल में **'नील विद्रोह' (Indigo Revolt)** हुआ, जिसका सजीव चित्रण दीनबंधु मित्र ने अपने नाटक *'नील दर्पण'* में किया।

2. अफ़ीम (Opium)

ब्रिटेन का चीन के साथ चाय और रेशम का एकतरफा व्यापार था, जिसके लिए ब्रिटेन को चांदी चुकानी पड़ती थी। इस व्यापार संतुलन को अपने पक्ष में करने के लिए अंग्रेजों ने भारत (विशेषकर बिहार और मालवा) में अफ़ीम की जबरन खेती कराई और उसे चीन में तस्करी के माध्यम से बेचा। किसानों को जबरन अफ़ीम उगाने के लिए पट्टे दिए जाते थे और राज्य का इस पर पूर्ण एकाधिकार था।

3. कपास (Cotton)

1861-65 के दौरान अमेरिकी गृहयुद्ध (American Civil War) के समय जब अमेरिका से ब्रिटेन को कपास की आपूर्ति ठप हो गई, तो बॉम्बे और दक्कन के किसानों को कपास उगाने के लिए भारी प्रोत्साहन और अग्रिम दिया गया। किसानों ने खाद्यान्न छोड़कर कपास बोना शुरू किया। किंतु जैसे ही 1865 में अमेरिकी युद्ध समाप्त हुआ, कपास की मांग और कीमतें औंधे मुंह गिर गईं। किसान गहरे कर्ज में डूब गए, जिसने 1875 के **दक्कन उपद्रव (Deccan Riots)** को जन्म दिया।

4. जूट, चाय और कॉफ़ी

बंगाल में जूट (पटसन) की खेती को बढ़ावा दिया गया ताकि पैकेजिंग बोरियां बनाई जा सकें। असम, दार्जिलिंग और नीलगिरि की पहाड़ियों में चाय और कॉफ़ी के बागान स्थापित किए गए। इन बागानों के मालिक यूरोपीय थे, जहां गिरमिटिया मज़दूरों (Indentured Laborers) को 'वर्कमैन ब्रीच ऑफ कॉन्ट्रैक्ट एक्ट' जैसे काले कानूनों के तहत बंधुआ बनाकर अमानवीय परिस्थितियों में काम कराया जाता था।

खाद्यान्न संकट और अकालों की पुनरावृत्ति

व्यावसायीकरण का सबसे घातक परिणाम यह हुआ कि खाद्यान्नों (गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा) के अधीन बोया गया रकबा घट गया और नकदी फसलों का रकबा बढ़ गया। इसके अलावा, भारत में उत्पन्न खाद्यान्न को भी रेलवे के ज़रिए बंदरगाहों तक पहुंचाकर यूरोप निर्यात कर दिया जाता था, जबकि देश के भीतर लोग दाने-दाने को तरस रहे थे।

- **1866 का ओडिशा अकाल:** लगभग 10 लाख से अधिक लोग मारे गए।
- **1876-78 का भीषण अकाल:** मद्रास, बॉम्बे, मैसूर और हैदराबाद में लगभग 50 लाख लोग भुखमरी की भेंट चढ़े, जबकि लॉर्ड लिटन के काल में दिल्ली दरबार में अपार धन फूंका जा रहा था और गेहूं का निर्यात जारी था।
- **1943 का बंगाल अकाल:** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश नीतियों और चर्चिल की 'युद्ध प्राथमिकताओं' के कारण 30 लाख से अधिक लोग मारे गए।

Dr Rakesh Mohan Nariyal

4. ग्रामीण ऋणग्रस्तता और वि-कृषिकीकरण (Rural Indebtedness & Depeasantization)

औपनिवेशिक शासन से पूर्व भी भारतीय गांवों में महाजन होते थे, किंतु वे ग्राम समुदाय का एक अभिन्न अंग थे। पारंपरिक समाज में न तो भूमि बेची जा सकती थी और न ही कोई साहूकार किसान की पुश्तैनी ज़मीन छीन सकता था। सामाजिक नैतिकता और ग्राम पंचायतें ब्याज की दरों पर नियंत्रण रखती थीं।

ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारण

1. **राजस्व का कठोर स्वरूप:** मानसून की विफलता पर भी लगान में कोई छूट नहीं मिलती थी। सूर्यास्त कानून और नीलामी से बचने के लिए किसान साहूकार के पास जाने को विवश था।
2. **मुद्रीकरण (Monetization):** अर्थव्यवस्था में सिक्कों और नकदी के प्रसार ने किसान को अपनी उपज तुरंत सस्ते दामों पर बेचने या नकद कर्ज लेने पर मजबूर किया।
3. **उत्पादक बनाम अनुत्पादक ऋण:** किसान केवल खेती के लिए ही नहीं, बल्कि अकाल के समय पेट भरने और सामाजिक रीति-रिवाजों (विवाह, श्राद्ध) के लिए भी ऊंची ब्याज दरों (24% से 100% तक) पर कर्ज लेता था।

साहूकार, अदालत और औपनिवेशिक कानून का अपवित्र गठबंधन

ब्रिटिश न्याय प्रणाली ने साहूकारों को असीमित शक्ति प्रदान कर दी:

- **कानूनी संविदा (Contract Law):** अंग्रेजों ने लिखित अनुबंधों को कानूनी मान्यता दी। अनपढ़ किसान अंगूठे का निशान लगा देते थे, जिसके बाद साहूकार बही-खातों में हेरफेर कर मूलधन को कई गुना बढ़ा देते थे।
- **दीवानी अदालतें:** नई अदालतें शहरों में थीं, जिनकी भाषा अंग्रेजी थी और प्रक्रियाएं अत्यंत खर्चीली व जटिल थीं। निर्धन किसान के लिए इन अदालतों में अपना पक्ष रखना असंभव था। अदालतें केवल अनुबंध की भाषा देखती थीं और साहूकार के पक्ष में 'डिक्री' (कुर्की का आदेश) जारी कर देती थीं।
- **भूमि का हस्तांतरण:** 1859 के 'सिविल प्रोसीजर कोड' ने ऋण न चुकाने की स्थिति में किसान की भूमि की कुर्की और नीलामी को वैध बना दिया।

[अनपढ़ किसान] ──(ऊंची ब्याज दर)──► [साहूकार/महाजन]

▲ |

| (फर्जी बही-खाता)

(भूमिहीन मज़दूर बना) ▼

| [दीवानी अदालत]

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

| (कुर्की की डिक्री)

| |

└──────── [भूमि की जब्ती] ◄────────┘

वि-कृषिकीकरण (Depeasantization) और सामाजिक परिणाम

इस ऋणजाल का परिणाम यह हुआ कि भूमि वास्तविक कृषक के हाथों से निकलकर गैर-कृषक साहूकारों, व्यापारियों और सटोरियों के हाथों में चली गई।

- **भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों का अभ्युदय:** अपनी ही भूमि से बेदखल होकर किसान 'बटाईदार' (Sharecropper) या 'कृषि मज़दूर' (Agricultural Laborer) बन गया। 1871 से 1931 के बीच भारत में भूमिहीन कृषि मज़दूरों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।
- **बंधुआ मज़दूरी (Debt Bondage):** ऋण न चुका पाने के कारण पीढ़ियों तक परिवार के सदस्यों को साहूकार के यहां बंधुआ मज़दूर (कमिया, हरवाही प्रथा) के रूप में कार्य करना पड़ता था।
- **कृषक असंतोष और विद्रोह:** जब शोषण असहनीय हो गया, तो किसानों ने हथियार उठाए:
    - **दक्कन उपद्रव (1875):** महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर में किसानों ने साहूकारों के घरों और दुकानों पर हमला कर ऋण-पत्रों और बही-खातों को सार्वजनिक रूप से जला दिया। इसके बाद सरकार को 'दक्कन एग्रीकल्चरिस्ट्स रिलीफ एक्ट (1879)' पारित करना पड़ा।
    - **पंजाब लैंड एलियनेशन एक्ट (1900):** पंजाब में किसानों से गैर-कृषक जातियों को भूमि के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाने के लिए यह कानून लाया गया ताकि सेना में भर्ती होने वाले पंजाबी किसानों के असंतोष को थामा जा सके।

5. औपनिवेशिक वन नीति: पारंपरिक अधिकारों का हनन एवं जनजातीय विस्थापन

ब्रिटिश वन नीति के प्रेरक तत्व

18वीं सदी के अंत तक ब्रिटेन में ओक (Oak) के वनों की भारी कटाई के कारण नौसेना (Royal Navy) के युद्धपोत बनाने के लिए लकड़ी का गंभीर संकट पैदा हो गया। इसके समाधान के लिए अंग्रेजों की नज़र भारत के समृद्ध सागौन (Teak) और साल के जंगलों पर पड़ी।

1850 के दशक के बाद रेलवे के अभूतपूर्व विस्तार ने वनों के विनाश को गति दी। रेलवे ट्रैक बिछाने के लिए 'स्लीपर' (Sleepers) की भारी मांग थी (प्रत्येक मील ट्रैक के लिए लगभग 800 से 2000 स्लीपरों की आवश्यकता होती थी), जिसके लिए लाखों पेड़ों को अंधाधुंध काटा गया। इसके अतिरिक्त, चाय-कॉफ़ी के बागानों के विस्तार और कृषि योग्य भूमि बढ़ाकर अधिक भू-राजस्व वसूलने के लिए वनों की कटाई को 'सभ्यता का कार्य' घोषित किया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

वन कानूनों का विकास और वनों का वर्गीकरण

वनों के वैज्ञानिक प्रबंधन और दोहन के नाम पर 1864 में 'इंपीरियल फॉरेस्ट डिपार्टमेंट' की स्थापना की गई और एक जर्मन विशेषज्ञ **डिट्रिच ब्रैंडिस (Dietrich Brandis)** को भारत का पहला इंस्पेक्टर जनरल ऑफ फॉरेस्ट नियुक्त किया गया।

1. भारतीय वन अधिनियम, 1865

यह पहला वैधानिक प्रयास था जिसके द्वारा राज्य ने वनों पर अपना स्वामित्व घोषित किया। हालांकि इसमें स्थानीय लोगों के कुछ अधिकारों को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सका था।

2. भारतीय वन अधिनियम, 1878 (निर्णायक मोड़)

इस कानून ने आदिवासियों और वनवासियों के सदियों पुराने पारंपरिक अधिकारों को पूरी तरह कुचल दिया। वनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया:

- **आरक्षित वन (Reserved Forests):** ये सबसे मूल्यवान और व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण वन थे। यहां आदिवासियों और स्थानीय लोगों का प्रवेश पूरी तरह वर्जित था। लकड़ी काटना, पशु चराना, कंद-मूल इकट्ठा करना दंडनीय अपराध बना दिया गया।
- **संरक्षित वन (Protected Forests):** इनमें स्थानीय लोगों को कुछ सीमित विशेषाधिकार (Concessions) दिए गए, लेकिन राज्य जब चाहे उन्हें समाप्त कर सकता था।
- **ग्रामीण वन (Village Forests):** ये बंजर या कम उपयोगी वन थे, जिनका उपयोग ग्रामीण केवल अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए कर सकते थे।

3. भारतीय वन अधिनियम, 1927

इस अधिनियम ने 1878 के कानून को और अधिक कठोर बनाया, वन अपराधों के लिए वन विभाग और पुलिस को बिना वारंट गिरफ्तारी के व्यापक अधिकार दिए और राज्य के एकाधिकार को अंतिम रूप प्रदान किया।

आदिवासियों के पारंपरिक जीवन पर विनाशकारी प्रभाव

[औपनिवेशिक वन कानून (1878 / 1927)]

|

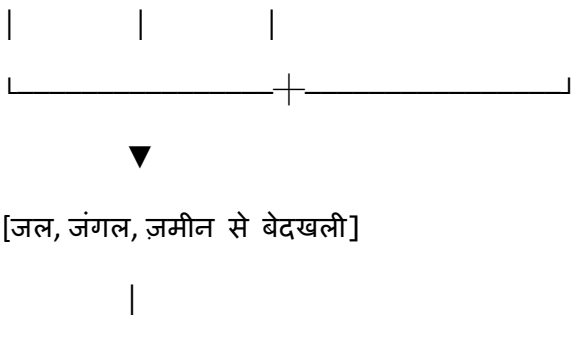
┌──────────────┼──────────────┐

▼ ▼ ▼

[स्थानांतरित कृषि पर] [वनोपज संग्रहण पर] [बेगार व शोषण]

(झूम पर रोक) (कंद-मूल, शहद बंद) (ठेकेदारों द्वारा)

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal



1. **झूम / स्थानांतरित कृषि (Shifting Cultivation) पर प्रतिबंध:**

अंग्रेज स्थानांतरित कृषि (जिसे बेवर, पोडू, झूम आदि कहा जाता था) को वनों के लिए हानिकारक मानते थे, क्योंकि इससे रेलवे के लिए उपयोगी कीमती लकड़ी जल जाती थी और सरकार के लिए कर वसूलना कठिन होता था। इस प्रतिबंध ने जनजातियों को भुखमरी के कगार पर धकेल दिया।

2. **पारंपरिक अधिकारों का अपराधीकरण:**

जंगल, जिसे आदिवासी अपनी माता और सामूहिक संपत्ति मानते थे, रातों-रात सरकारी संपत्ति बन गया। अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए सूखी लकड़ी चुनना, महुआ बीनना या मवेशी चराना कानूनन 'चोरी' घोषित कर दिया गया।

3. **दिक्कुओं (बाहरी लोगों) का प्रवेश:**

ब्रिटिश संरक्षण में जंगलों में ठेकेदारों, शराब के व्यापारियों, साहूकारों और ब्रिटिश अधिकारियों (जिन्हें छोटानागपुर क्षेत्र में 'दिक्कू' कहा गया) की बाढ़ आ गई। उन्होंने आदिवासियों को मामूली कर्जों के बदले बंधुआ मज़दूर बना लिया।

जनजातीय प्रतिरोध एवं ऐतिहासिक विद्रोह

अपनी स्वायत्तता, संस्कृति और 'जल, जंगल, ज़मीन' की रक्षा के लिए जनजातियों ने ब्रिटिश सत्ता और उनके दलालों के विरुद्ध हिंसक विद्रोह किए:

- **चुआर एवं पहाड़िया विद्रोह (1770-1800 के दशक):** बंगाल और बिहार (राजमहल पहाड़ियों) में ब्रिटिश घुसपैठ के विरुद्ध प्रारंभिक हिंसक प्रतिरोध।
- **संथाल हुल (1855-56):** सिद्धू और कान्हू के नेतृत्व में संथालों ने साहूकारों, ज़मींदारों और ब्रिटिश पुलिस के गठजोड़ के विरुद्ध खुला युद्ध छेड़ दिया।
- **मुंडा उलगुलान (1899-1900):** बिरसा मुंडा के नेतृत्व में छोटानागपुर में पारंपरिक सामूहिक भूमि व्यवस्था ('खूंटकट्टी प्रथा') की पुनर्स्थापना और विदेशी शासन के खात्मे के लिए महाविद्रोह हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **रम्पा विद्रोह (1922-24):** अल्लूरी सीताराम राजू के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश के मद्रास प्रेसीडेंसी में 1882 के मद्रास वन अधिनियम और पोडू खेती पर प्रतिबंध के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध लड़ा गया।

6. भारतीय अर्थव्यवस्था पर समग्र प्रभाव

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता और लचीलेपन को समूल नष्ट कर दिया। इसके प्रमुख समग्र प्रभाव निम्नलिखित थे:

1. वि-औद्योगीकरण और कृषि पर अतिरिक्त दबाव (De-industrialization)

ब्रिटेन से आयातित मशीन-निर्मित सस्ते सूती वस्त्रों ने भारत के विश्वप्रसिद्ध हथकरघा और हस्तशिल्प उद्योग को तबाह कर दिया। लाखों जुलाहे, बुनकर और दस्तकार बेरोज़गार हो गए। चूंकि आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हुआ था, इसलिए ये सभी उजड़े हुए कारीगर आजीविका के लिए कृषि की ओर भागे। 19वीं सदी के दौरान कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता घटने के बजाय बढ़ती चली गई (1891 में लगभग 61% से बढ़कर 1931 में 75% से अधिक हो गई), जिससे प्रच्छन्न बेरोज़गारी (Disguised Unemployment) और गरीबी चरम पर पहुंच गई।

2. धन की निकासी का सिद्धांत (Drain of Wealth)

दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक '*पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया*' (Poverty and Un-British Rule in India) में उजागर किया कि कैसे भारत का धन बिना किसी यथोचित प्रतिफल के निरंतर ब्रिटेन भेजा जा रहा था। इसे आर. सी. दत्त ने '*इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया*' में विस्तार से समझाया। भू-राजस्व से वसूला गया अधिशेष 'गृह प्रभार' (Home Charges), ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयरधारकों के लाभांश, ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन व पेंशन, और विदेशी युद्धों के वित्तपोषण के माध्यम से बाहर भेजा जाता था, जिससे भारत में पूंजी निर्माण (Capital Formation) पूरी तरह अवरुद्ध हो गया।

7. निष्कर्ष एवं ऐतिहासिक विरासत

औपनिवेशिक शासन के तहत भारत में हुए तथाकथित "आर्थिक आधुनिकीकरण" का वास्तविक चरित्र अत्यंत प्रतिगामी और शोषक था। अंग्रेजों ने जो भूमि बंदोबस्त लागू किए, उनका उद्देश्य कृषि का विकास करना नहीं, बल्कि राज्य के लिए जोखिम-मुक्त, नियमित राजस्व सुनिश्चित करना और एक ऐसा वफादार ज़मींदार वर्ग तैयार करना था जो संकट के समय विदेशी शासन की रक्षा कर सके।

- **स्थायी बंदोबस्त** ने बंगाल को परजीवी ज़मींदारों और शोषित काश्तकारों का अखाड़ा बना दिया।
- **रैयतवाड़ी और महालवाड़ी** ने कागज़ पर तो किसानों को अधिकार दिए, किंतु अत्यधिक कर दरों और अमानवीय वसूली तंत्र के माध्यम से उन्हें साहूकारों के चंगुल में धकेल दिया।
- **कृषि का बाध्यकारी व्यावसायीकरण** भारतीय किसानों को अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी बाज़ार के उतार-चढ़ाव की वेदी पर चढ़ा दिया, जिसने देश को अंतहीन अकालों की विभीषिका में झोंक दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **वन नीतियों** ने वनों को केवल लकड़ी और मुनाफे का साधन मानकर भारत के मूल निवासियों (आदिवासियों) को उनके सदियों पुराने अधिकारों से बेदखल कर दिया।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो उसे विरासत में एक गतिहीन (Stagnant), क्षत-विक्षत और दरिद्र कृषि व्यवस्था मिली। स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय गणराज्य को ज़मींदारी उन्मूलन कानून, काश्तकारी सुधार, भूमि की चकबंदी व हदबंदी (Ceiling), सहकारी ऋण संस्थाओं का विस्तार और हालिया दौर में 'वन अधिकार अधिनियम, 2006' (Forest Rights Act) जैसे ऐतिहासिक कदम उठाने पड़े, ताकि औपनिवेशिक काल के इन गहरे ऐतिहासिक घावों को भरा जा सके। संक्षेप में, औपनिवेशिक आर्थिक नीतियां एक सुनियोजित तंत्र थीं, जिसने भारत को "सोने की चिड़िया" से बदलकर एक विपन्न, पराश्रित और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में रूपांतरित कर दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

हस्तशिल्प का ह्रास, सिंचाई का विकास, रेलवे की शुरूआत एवं आधुनिक उद्योग का विकास, आर्थिक पतन।

1. प्रस्तावना: औपनिवेशिक आर्थिक दर्शन एवं भारतीय संदर्भ

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के आरंभ तक भारत केवल एक विशाल कृषि प्रधान देश ही नहीं था, अपितु वैश्विक विनिर्माण व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था। आर्थिक इतिहासकार एंगस मैडिसन (Angus Maddison) के ऐतिहासिक अध्ययनों के अनुसार, सन् 1700 में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (Global GDP) में भारत की हिस्सेदारी लगभग 27% थी, जो पूरे पश्चिमी यूरोप के कुल उत्पादन से भी अधिक थी। भारत के महीन सूती व रेशमी वस्त्र, धातु के औजार, मसाले, संगमरमर का नक्काशी कार्य, चमड़ा उत्पाद और जहाज निर्माण उद्योग समूचे यूरोप, पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रतिष्ठा के प्रतीक माने जाते थे।

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मूल विशेषता उसकी 'आत्मनिर्भरता' और 'कृषि तथा दस्तकारी का सह-अस्तित्व' थी। गांव के कुम्हार, बढ़ई, लोहार, बुनकर और चर्मकार कृषि उत्पादन के पूरक के रूप में कार्य करते थे। उन्हें गांव की उपज से एक निश्चित हिस्सा मिलता था, जिससे बाह्य बाज़ारों पर उनकी निर्भरता न्यूनतम रहती थी।

[पारंपरिक भारतीय संतुलन]

कृषि क्षेत्र <═══════ पारस्परिकता एवं स्थानीय विनिमय ═══════> ग्रामीण हस्तशिल्प

(ग्राम-समुदाय की आत्मनिर्भरता)

[औपनिवेशिक हस्तक्षेप के बाद]

ब्रिटिश कारखाने (लंकाशायर/मैनचेस्टर)

| ▲

| (सस्ते निर्मित माल) | (सस्ता कच्चा माल)

▼ |

भारतीय बाज़ार ————► पारंपरिक दस्तकारी का नाश ————► केवल कृषि पर दबाव

1757 के प्लासी और 1764 के बक्सर के युद्धों के पश्चात् जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर अपना शिकंजा कसा, तो यह पारंपरिक संतुलन पूरी तरह ध्वस्त हो गया। ब्रिटेन में 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध

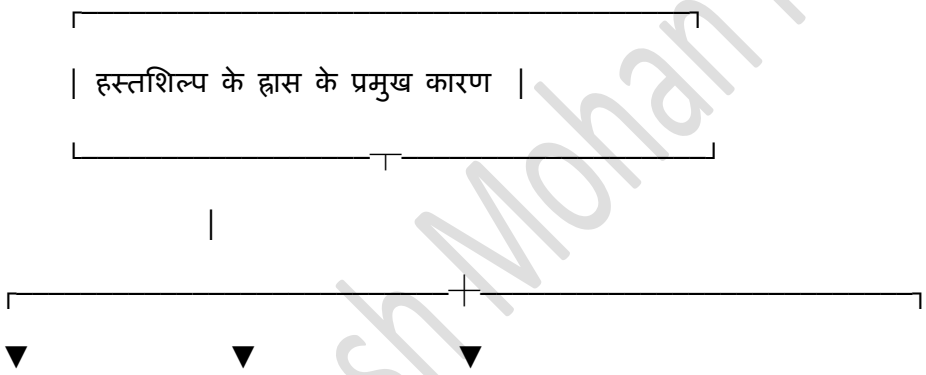
Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

में हुई **औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution)** ने औपनिवेशिक राज्य के चरित्र को व्यापारिक मुनाफे से बदलकर औद्योगिक पूंजीवाद के औजार में रूपांतरित कर दिया।

औपनिवेशिक आर्थिक दर्शन का मूल आधार यह था कि भारत को ब्रिटेन के औद्योगिक कारखानों के लिए **कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता** और उन कारखानों में बने **निर्मित सामान का एक सुरक्षित बाज़ार** बनाया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत की पारंपरिक आर्थिक संरचनाओं का व्यवस्थित विखंडन किया गया, जिसे आधुनिक इतिहासलेखन में "वि-औद्योगीकरण" और "औपनिवेशिक अविकास" (Colonial Underdevelopment) की संज्ञा दी जाती है।

2. पारंपरिक हस्तशिल्प एवं कुटीर उद्योगों का पतन (De-industrialization)

19वीं शताब्दी के दौरान भारत के पारंपरिक विनिर्माण क्षेत्र का विनाश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का सबसे प्रत्यक्ष परिणाम था। इसे इतिहासकार 'वि-औद्योगीकरण' कहते हैं—अर्थात वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी देश की कार्यबल आबादी में औद्योगिक क्षेत्र का अनुपात निरंतर घटता जाए और लोग विवश होकर कृषि पर आश्रित होते जाएं।



पतन के प्रमुख कारण

1. **ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति और मशीन-निर्मित माल की प्रतिस्पर्धा:**

भाप की शक्ति से चलने वाले लंकाशायर और मैनचेस्टर के वस्त्र कारखानों ने भारी मात्रा में अत्यंत सस्ते, मानक और आकर्षक वस्त्रों का उत्पादन किया। भारत के हाथ से बुने वस्त्र, यद्यपि गुणवत्ता और कलात्मकता में कहीं श्रेष्ठ थे, किंतु मूल्य और उत्पादन गति के मोर्चे पर वे मशीनों का मुकाबला नहीं कर सके।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

2. **एकतरफा मुक्त व्यापार और भेदभावपूर्ण सीमा शुल्क (One-way Free Trade Policy):**

ब्रिटिश संसद ने भारतीय तैयार माल पर ब्रिटेन में अत्यधिक सीमा शुल्क (Tariff) लगा दिया। 1813 से 1830 के बीच ब्रिटेन में आयात किए जाने वाले भारतीय सूती वस्त्रों पर 70% से 80% तक का शुल्क थोपा गया, जबकि दूसरी ओर 1813 के चार्टर एक्ट के तहत भारत के बाज़ार को ब्रिटिश माल के लिए लगभग शून्य आयात शुल्क (2-3.5%) पर खोल दिया गया। इस प्रकार भारतीय वस्त्रों को विदेशी बाज़ारों से बाहर कर दिया गया और घरेलू बाज़ार में उनका संरक्षण छीन लिया गया।

3. **संरक्षक देशी रियासतों और राजदरबारों का अंत:**

भारत के उच्च कोटि के हस्तशिल्प—जैसे कश्मीर के पश्मीना शॉल, ढाका की मलमल, बनारस के ज़री-गोटा वस्त्र और राजस्थान के संगमरमर व हाथीदांत के काम—के मुख्य संरक्षक मुग़ल सम्राट, नवाब और राजपूत राजा थे। लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि (Subsidiary Alliance) और लॉर्ड डलहौज़ी की व्यपगत नीति (Doctrine of Lapse) के तहत जब इन रियासतों का विलय ब्रिटिश भारत में हुआ, तो इन शिल्पों का पारंपरिक अभिजात वर्ग समाप्त हो गया। इसके स्थान पर जिस नए अंग्रेज़ी-शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ, उसने यूरोपीय जीवनशैली और विदेशी सामान को अपनाना प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा।

4. **कच्चे माल का बलात निर्यात:**

भारत में उत्पादित सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले कच्चे माल (विशेष रूप से उच्च श्रेणी की कपास और कच्चा रेशम) को रेलवे के माध्यम से बंदरगाहों तक पहुंचाकर सीधे ब्रिटेन भेज दिया जाता था। इसके कारण स्थानीय बुनकरों के लिए कच्चा माल दुर्लभ और अत्यधिक महंगा हो गया, जिससे उनका उत्पादन करना आर्थिक रूप से अव्यवहारिक हो गया।

प्रमुख शिल्प क्षेत्रों का विध्वंस

- **वस्त्र उद्योग:** बंगाल का ढाका, जो अपनी पारदर्शी और कोमल मलमल के लिए संसार भर में विख्यात था, वीरान हो गया। 1820 के दशक में ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने ब्रिटिश संसद को भेजी अपनी आधिकारिक रिपोर्ट में लिखा था:

"इस दरिद्रता का व्यापार के इतिहास में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। सूती बुनकरों की हड्डियां भारत के मैदानों को विरंजित (bleaching the plains) कर रही हैं।"

मुर्शिदाबाद, सूरत, अहमदाबाद और तंजौर जैसे समृद्ध वस्त्र विनिर्माण नगर उजड़ गए और काम की तलाश में कारीगर गांवों की ओर पलायन करने लगे।

- **धातु एवं अस्त्र-शस्त्र शिल्प:** भारत का धातु उद्योग, विशेषकर दमिश्क ब्लेड बनाने के लिए प्रसिद्ध 'वुट्ज़ स्टील' (Wootz Steel) और पीतल-कांस्य के बर्तन निर्माण, ब्रिटिश नीतियों के कारण नष्ट हो गया। 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने सुरक्षा कारणों से भारतीयों द्वारा हथियार रखने और धातु

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

गलाने (Iron Smelting) पर कड़े कानूनी प्रतिबंध लगा दिए, जिससे पारंपरिक धातु कर्मकार बेरोज़गार हो गए।

- **जहाज निर्माण उद्योग:** 18वीं सदी के अंत तक भारत में निर्मित टीक (सागौन) की लकड़ी के जहाज़ ब्रिटेन के ओक निर्मित जहाज़ों से कहीं अधिक टिकाऊ और सस्ते थे। ब्रिटिश नौपरिवहन उद्योगपतियों के दबाव में ब्रिटिश संसद ने 1814 में कानून पारित कर भारतीय जहाज़ों के ब्रिटिश जलक्षेत्र में प्रवेश और भारतीय नाविकों की नियुक्ति पर कठोर प्रतिबंध लगा दिए, जिससे भारत का नौवहन उद्योग समाप्त हो गया।

वि-औद्योगीकरण के सामाजिक-आर्थिक दुष्परिणाम

[पारंपरिक शिल्पकारों की बेरोज़गारी]

|

▼

[कृषि भूमि की ओर व्यापक पलायन (Ruralization)]

|

▼

[खेतों का अति-विभाजन एवं विखंडन (Fragmentation)]

|

▼

[प्रच्छन्न बेरोज़गारी (Disguised Unemployment) + कम उत्पादकता]

|

▼

[ऋणग्रस्तता ⟶ ज़मीन से बेदखली ⟶ भूमिहीन खेतिहर मज़दूर]

1. **अर्थव्यवस्था का ग्रामीणिकरण (Ruralization of the Economy):**

जब शहरों और कस्बों के कारखाने बंद हुए, तो लाखों कारीगरों, बुनकरों, रंगरेज़ों और लोहारों के पास आजीविका का कोई अन्य साधन नहीं बचा। वे सभी गांवों की ओर भागे और उन्होंने खेती में मज़दूरी या बटाईदारी की तलाश शुरू की।

2. **कृषि पर अत्यधिक जनसंख्या का दबाव:**

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

19वीं शताब्दी के दौरान जहां पश्चिमी देशों में औद्योगिकीकरण के कारण कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत घटा, वहीं भारत में यह उलटी दिशा में बढ़ा। वर्ष 1891 में लगभग 61% जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी, जो 1931 की जनगणना तक बढ़कर 75% से अधिक हो गई।

3. **भूमि का विखंडन और उत्पादकता में ह्रास:**

कृषि पर बढ़ते दबाव ने खेतों को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया। भूमि का अत्यधिक विखंडन आधुनिक कृषि उपकरणों के प्रयोग में बाधक बना, जिससे प्रति हेक्टेयर और प्रति व्यक्ति उत्पादकता में भारी गिरावट आई।

3. औपनिवेशिक काल में सिंचाई प्रणाली का विकास

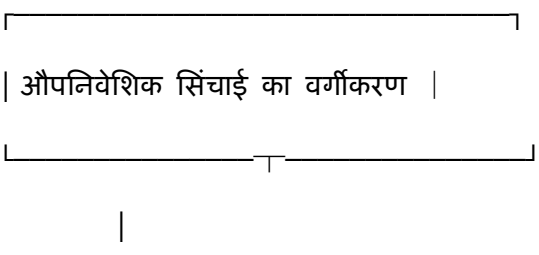
19वीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटिश शासन ने भारत में नहरों और सिंचाई अवसंरचना के निर्माण में रुचि लेना प्रारंभ किया। यद्यपि सतही तौर पर इसे लोक-कल्याणकारी कदम बताया गया, किंतु इसके मूल प्रेरक आर्थिक और रणनीतिक थे।

सिंचाई विकास के वास्तविक अभिप्रेरक

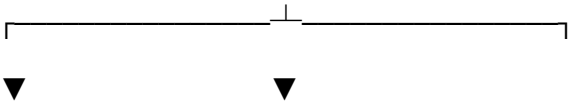
- **राजस्व की सुरक्षा:** ब्रिटिश शासन का मुख्य वित्तीय आधार भू-राजस्व था। यदि मानसून विफल होता, तो राजस्व संग्रह में भारी गिरावट आती थी। सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध कराकर राज्य अपनी आय को सूखा-प्रतिरोधी बनाना चाहता था।
- **व्यावसायिक फसलों (नकदी फसलों) का संवर्धन:** ब्रिटेन के सूती वस्त्र कारखानों को नियमित कपास, जूट, गन्ना और गेहूं की आवश्यकता थी। इन फसलों को उगाने के लिए निश्चित और प्रचुर जल आपूर्ति अनिवार्य थी।
- **अकाल आयोगों की सिफारिशें:** 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बार-बार पड़े भीषण अकालों (विशेषकर 1876-78 का मद्रास-दक्कन अकाल) के बाद गठित स्ट्रेची कमीशन (1880) और मैकडॉनल कमीशन (1901) ने चेताया कि यदि सिंचाई का विस्तार नहीं किया गया, तो भुखमरी से उत्पन्न जन-असंतोष ब्रिटिश राज के अस्तित्व को खतरे में डाल देगा।

प्रमुख नहर परियोजनाएं

ब्रिटिश काल में सिंचाई निर्माण को दो चरणों में देखा जा सकता है:



Dr. Rakesh Mohan Nautiyal



[उत्पादक कार्य (Productive)] [सुरक्षात्मक कार्य (Protective)]

नहर निर्माण पर प्रत्यक्ष जल-कर अकाल-प्रवण क्षेत्रों में अकाल राहत

(Water Cess) से 6-10% लाभ हेतु सीमित व्यय; वित्तीय दृष्टि

(उदा. पंजाब की नहर कॉलोनियां) से अनुत्पादक माने जाने के कारण उपेक्षित

1. **पारंपरिक नहरों का जीर्णोद्धार (प्रारंभिक चरण):**

मुग़ल और सल्तनत कालीन पुरानी नहरों को नए सिरे से चालू किया गया। 1820 के दशक में **पश्चिमी यमुना नहर** और 1830 में **पूर्वी यमुना नहर** का पुनरुद्धार किया गया।

2. **नई विशाल नहर प्रणालियां:**
    - **ऊपरी गंगा नहर (1854):** सर प्रोबी कॉटले द्वारा निर्मित, यह हरिद्वार से कानपुर तक लगभग 500 किलोमीटर लंबी थी। यह उस समय दुनिया के सबसे बड़े इंजीनियरिंग कार्यों में से एक थी।
    - **गोदावरी और कृष्णा डेल्टा प्रणाली:** दक्षिण भारत में सर आर्थर कॉटन ने गोदावरी और कृष्णा नदियों पर एनीकट (बैराज) बनाकर तटीय आंध्र में सिंचाई का जाल बिछाया, जिससे यह क्षेत्र चावल उत्पादन का बड़ा केंद्र बना।
    - **बारी दोआब नहर (पंजाब, 1859):** रावी नदी से निकाली गई इस नहर का उद्देश्य 1857 के बाद सिख सैनिकों को कृषि में पुनर्वासित करना था।
3. **पंजाब की "नहर कॉलोनियां" (Canal Colonies):**

1885 से 1940 के बीच पश्चिमी पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान) के अर्ध-मरुस्थलीय क्षेत्रों में चिनाब, झेलम और रावी नदियों के पानी को मोड़कर नौ विशाल नहर कॉलोनियां (जैसे लायलपुर, मोंटगोमरी) बसाई गईं। यहां ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार सेवानिवृत्त सैनिकों और बड़े ज़मींदारों को ज़मीनें बांटी गईं।

सिंचाई प्रणाली की सीमाएं और पारिस्थितिकीय संकट

यद्यपि ब्रिटिश काल में सिंचित भूमि का क्षेत्रफल 19वीं सदी के अंत में लगभग 1.25 करोड़ एकड़ से बढ़कर 1947 तक 5 करोड़ एकड़ से अधिक हो गया, किंतु इसका स्वरूप अत्यंत विषम था:

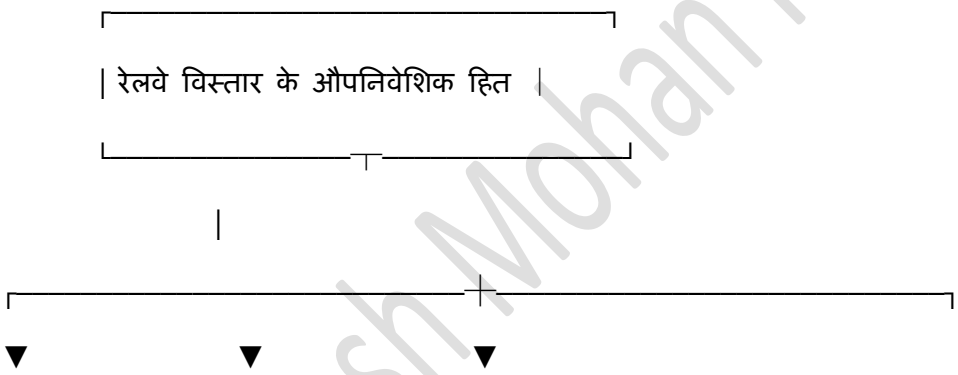
- **अत्यधिक जल-कर (Water Rates):** नहरों से पानी लेने के बदले किसानों पर भारी 'आबियाना' (जल-कर) लगाया गया। यह कर इतना अधिक था कि केवल धनी और बड़े किसान ही इसका लाभ उठा पाते थे; निर्धन किसान वंचित ही रहे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **पारंपरिक जल प्रणालियों का विनाश:** अंग्रेजों ने आधुनिक नहरों पर ध्यान केंद्रित करते हुए भारत की सदियों पुरानी पारंपरिक सिंचाई प्रणालियों—जैसे दक्षिण भारत के तालाब (Eri System), बिहार की आहर-पाइन प्रणाली और राजस्थान के जोहड़ों—की पूर्ण उपेक्षा की। रख-रखाव के अभाव में ये पारंपरिक जल निकाय नष्ट हो गए।
- **पारिस्थितिकीय विसंगतियां (Waterlogging and Salinity):** अवैज्ञानिक जल निकासी (Drainage) व्यवस्था के अभाव में हज़ारों एकड़ उपजाऊ भूमि दलदली हो गई या सतह पर खारापन आ गया, जिसे स्थानीय भाषा में 'रेह' या 'कल्लड़' कहा गया। इसके अतिरिक्त, स्थिर जल के कारण मलेरिया जैसी महामारियां अनियंत्रित रूप से फैलीं।

4. भारतीय रेलवे का सूत्रपात: साम्राज्यवादी एकीकरण की धुरी

16 अप्रैल 1853 को बॉम्बे (बोरीबंदर) से ठाणे के बीच 34 किलोमीटर की दूरी पर भारत की पहली यात्री ट्रेन चली। यह घटना भारत के आर्थिक इतिहास में एक युगांतकारी मोड़ थी। रेलवे के विकास ने औपनिवेशिक नियंत्रण को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की।



[सैन्य एवं रणनीतिक सुरक्षा] [कच्चे माल का तीव्र संचलन] [ब्रिटिश पूंजी का सुरक्षित निवेश]

विद्रोहों को कुचलने हेतु आंतरिक गांवों से कपास/गेहूं ब्रिटिश निवेशकों को सरकारी

सैनिकों व तोपों का त्वरित सीधे बंदरगाहों तक पहुंचाना; राजस्व से 5% निश्चित लाभांश

परिवहन (1857 के बाद बल) ब्रिटिश माल गांव-गांव तक की गारंटी (निजी लाभ, सार्वजनिक हानि)

लॉर्ड डलहौज़ी का 1853 का मिनट

गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने अपने प्रसिद्ध 'रेलवे मिनट' में विस्तार से लिखा कि रेलवे से ब्रिटेन को दोहरे लाभ होंगे:

पहला, यह ब्रिटिश सेना को भारत के किसी भी कोने में विद्रोह दबाने के लिए कुछ ही घंटों में पहुंचाने में सक्षम बनाएगा।

दूसरा, यह भारत के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों को इंग्लैंड के लंकाशायर के कपड़ा मिलों से सीधे जोड़ देगा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

गारंटी प्रणाली (The Guarantee System) और वित्तीय दोहन

भारत में रेलवे का निर्माण राज्य ने स्वयं नहीं किया, बल्कि इसके लिए ब्रिटिश निजी कंपनियों (जैसे Great Indian Peninsula Railway, East Indian Railway) को आमंत्रित किया गया। इसके लिए **'गारंटी प्रणाली'** लागू की गई:

1. **5% निश्चित लाभांश की गारंटी:** ब्रिटिश कंपनियों को उनके निवेश पर भारतीय राजस्व से 4.5% से 5% के वार्षिक लाभ की गारंटी दी गई, भले ही कंपनी को घाटा हो या मुनाफा।
2. **मुफ्त भूमि आवंटन:** कंपनियों को रेलवे लाइन बिछाने के लिए 99 वर्षों के पट्टे पर निःशुल्क भूमि दी गई।
3. **सार्वजनिक जोखिम पर निजी लाभ:** चूंकि कंपनियों का मुनाफा सुनिश्चित था, इसलिए उन्होंने निर्माण में भारी फिजूलखर्ची की। इतिहासकार विलियम डिग्बी के अनुसार, जहां एक मील रेलवे लाइन अमेरिका में £2,000 में बन जाती थी, वहीं भारत में गारंटी व्यवस्था के कारण प्रति मील लागत £18,000 से £30,000 तक पहुंच गई। इसका सारा वित्तीय बोझ भारतीय करदाताओं पर पड़ा।

राष्ट्रवादी नेता विपिन चंद्र पाल ने इस पर तीखी टिप्पणी करते हुए इसे **"पराए धन पर दावत"** कहा था।

रेलवे नेटवर्क का ढांचा: बंदरगाह-उन्मुख ट्रंक लाइनें

भारतीय रेलवे का लेआउट भारत के आंतरिक विकास की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं बनाया गया था। लाइनें इस प्रकार बिछाई गईं कि वे आंतरिक उत्पादन केंद्रों (जैसे बरार की कपास बेल्ट, बिहार के शोरा व अफ़ीम क्षेत्र, पंजाब के गेहूं क्षेत्र) को सीधे तीन प्रमुख औपनिवेशिक बंदरगाहों—**बॉम्बे, कलकत्ता और मद्रास**—से जोड़ती थीं।

[भारत के आंतरिक गांव] —(रेलवे ट्रंक लाइन)—► [बंदरगाह: बॉम्बे/कलकत्ता] —► [ब्रिटेन की फैक्ट्रियां]

▲ |

└——— (ब्रिटिश निर्मित माल का आयात)

◄———————————————————┘

इसके अतिरिक्त, रेलवे की **भाड़ा नीति (Freight Policy)** अत्यंत भेदभावपूर्ण थी। यदि कोई कच्चा माल आंतरिक भाग से बंदरगाह भेजा जाता या विदेशी तैयार माल बंदरगाह से भीतर लाया जाता, तो रेलवे भाड़ा बहुत कम लगता था। किंतु यदि कोई भारतीय उद्योगपति अपने कारखाने के लिए एक आंतरिक शहर से दूसरे आंतरिक शहर (जैसे अहमदाबाद से कानपुर) माल भेजता, तो उस पर अत्यधिक भाड़ा वसूला जाता था। इससे भारतीय उद्योगों का उभरना अत्यंत कठिन हो गया।

रेलवे का द्वैध चरित्र: प्रगति बनाम औपनिवेशिक शोषण

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

आयाम	सकारात्मक / आधुनिकतावादी पक्ष	शोषक / औपनिवेशिक वास्तविकता
बाज़ार का एकीकरण	देश में एक राष्ट्रीय बाज़ार का निर्माण हुआ; वस्तु विनिमय सरल हुआ।	इस एकीकरण ने विदेशी मशीन-निर्मित माल को भारत के सुदूर गांवों तक पहुंचाकर ग्रामीण दस्तकारी का समूल नाश कर दिया।
अकाल राहत	अनाज की कमी वाले क्षेत्रों में खाद्यान्न पहुंचाना संभव हुआ।	इसने खाद्यान्न को गांवों से खींचकर बंदरगाहों तक पहुंचाना आसान बना दिया, जिससे क्षेत्रीय भंडार रिक्त हो गए और अकाल की मार अधिक गहरी हुई।
राष्ट्रीय चेतना	विभिन्न प्रांतों के लोगों के बीच संपर्क बढ़ा, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन और सामाजिक चेतना को गति दी।	रेल डिब्बों में भारतीयों के साथ नस्लीय भेदभाव (तृतीय श्रेणी के यात्रियों की नारकीय स्थिति) हुआ।
औद्योगिक जुड़ाव (Backward Linkages)	आधुनिक इंजीनियरिंग कौशल और तकनीशियनों का एक संवर्ग तैयार हुआ।	रेलवे के इंजन, डिब्बे, पटरियां यहां तक कि कोयला भी ब्रिटेन से आयात किया गया; जिससे भारत में भारी इंजीनियरिंग उद्योग का विकास नहीं हो सका।

कार्ल मार्क्स ने 1853 में अपने लेख *'द फ्यूचर रिजल्ट्स ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया'* में अनुमान लगाया था कि रेलवे प्रणाली भारत में आधुनिक उद्योग की पूर्वगामी सिद्ध होगी। किंतु भारत में रेलवे का विकास एक "एन्क्लेव अर्थव्यवस्था" (Enclave Economy) बनकर रह गया, जिसने अंग्रेजों के आर्थिक हितों की तो सेवा की, किंतु भारतीय औद्योगिकीकरण को आवश्यक गति नहीं दे सका।

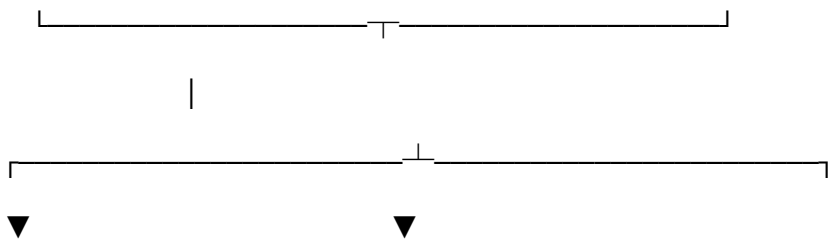
5. आधुनिक उद्योगों का धीमा एवं असंतुलित विकास

भारत में आधुनिक बड़े पैमाने के कारखानों का उदय 19वीं सदी के मध्य (1850 के दशक) में प्रारंभ हुआ, किंतु इसकी गति पश्चिमी देशों या जापान की तुलना में अत्यंत धीमी, एकांगी और पंगु थी।

┌──────────────────────────────────────┐

| औपनिवेशिक भारत में आधुनिक उद्योग का रूप |

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal



[यूरोपीय पूंजी के अधीन] [भारतीय पूंजी के अधीन]

- चाय, कॉफ़ी, रबर के बागान - सूती वस्त्र (बॉम्बे, अहमदाबाद)

- जूट मिलें (हुगली घाटी, बंगाल) - लौह एवं इस्पात (टाटा / TISCO)

- कोयला खनन एवं नौपरिवहन - सीमेंट, चीनी एवं कागज़ (1930 के बाद)

(लक्ष्य: ब्रिटिश निर्यात व कच्चा माल) (कठोर भेदभाव और प्रतिस्पर्धा से संघर्ष)

यूरोपीय पूंजी और प्रबंधकीय एजेंसियां (Managing Agency System)

प्रारंभिक दौर में आधुनिक उद्योग विदेशी (ब्रिटिश) पूंजीपतियों के हाथों में था।

- **बागान उद्योग:** असम और बंगाल में चाय बागान, दक्षिण भारत में कॉफ़ी और रबर के बागानों पर यूरोपीय कंपनियों का पूर्ण नियंत्रण था। ब्रिटिश सरकार ने 'असम लेबर एंड इमिग्रेशन एक्ट' जैसे दमनकारी कानून बनाकर मज़दूरों को बंधुआ बनाकर रखा।
- **जूट उद्योग:** कलकत्ता में हुगली नदी के तट पर पहली जूट मिल 1855 में रिशरा में स्थापित की गई। इसका पूरा स्वामित्व और प्रबंधन स्कॉटिश और ब्रिटिश उद्योगपतियों के पास था, जो पैकेजिंग सामग्री का भारी निर्यात करते थे।
- **प्रबंधकीय एजेंसियां:** एंड्रयू यूल (Andrew Yule), बर्ड हीलजर्स (Bird Heiligers) जैसी ब्रिटिश प्रबंधकीय एजेंसियों ने भारतीय वित्त, नौवहन, कोयला और बीमा बाज़ार पर एकाधिकार जमा रखा था। ये एजेंसियां भारतीय उद्यमियों को बाज़ार में प्रवेश करने से रोकती थीं।

भारतीय उद्यमिता का उद्भव: सूती वस्त्र और इस्पात उद्योग

अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में दूरदर्शी भारतीय व्यापारियों ने आधुनिक उद्योगों की नींव रखी:

1. **सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textiles):**

1854 में **कावसजी नानाभाई डाबर** ने बॉम्बे में पहली सफल सूती कपड़ा मिल (Bombay Spinning and Weaving Company) की स्थापना की। इसके बाद पारसी, गुजराती और मारवाड़ी पूंजीपतियों ने बॉम्बे, अहमदाबाद, शोलापुर और नागपुर में सूती वस्त्र मिलों का जाल बिछा दिया। यह पूर्णतः भारतीय पूंजी द्वारा संचालित उद्योग था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

2. **लौह एवं इस्पात उद्योग (TISCO):**

जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा के विज़न के परिणामस्वरूप 1907 में जमशेदपुर (साकची, बिहार/झारखंड) में **टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (TISCO)** की स्थापना हुई, जिसने 1911 में पिग आयरन और 1912 में स्टील का उत्पादन प्रारंभ किया। यह भारत में भारी उद्योग की दिशा में पहला क्रांतिकारी मील का पत्थर था।

3. **अन्य उद्योग:** 1930 के दशक के बाद चीनी, सीमेंट, कागज़ और रसायन उद्योग में बिड़ला, डालमिया और सिंघानिया समूहों ने प्रवेश किया।

औपनिवेशिक बाधाएं: भारतीय उद्योगों के मार्ग में रोड़े

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास को हतोत्साहित करने के लिए कई हथकंडे अपनाए:

- **उत्पाद शुल्क (Cotton Excise Duty, 1894-1896):**

जब भारतीय सूती मिलों ने मैनचेस्टर के महीन कपड़े को चुनौती देना शुरू किया, तो ब्रिटिश सरकार ने लंकाशायर के दबाव में भारतीय मिलों द्वारा बनाए गए कपड़े पर **3.5% का आंतरिक उत्पाद शुल्क (Countervailing Excise Duty)** लगा दिया। दुनिया के आर्थिक इतिहास में यह दुर्लभ उदाहरण है जहां किसी सरकार ने अपने ही देश के उद्योगों पर आयातित माल को लाभ पहुंचाने के लिए उत्पाद शुल्क लगाया हो। यह काला कानून 1926 तक लागू रहा।

- **साम्राज्यवादी वरीयता (Imperial Preference):**

1930 के दशक (ओटावा सम्मेलन, 1932) में भारत पर यह व्यवस्था थोपी गई कि ब्रिटिश साम्राज्य के देशों से आने वाले माल पर न्यूनतम सीमा शुल्क लगेगा, जिससे अन्य विदेशी (जैसे जापानी या जर्मन) या भारतीय प्रतिस्पर्धी हतोत्साहित हुए।

- **रुपया-पाउंड विनिमय दर में हेरफेर:**

औपनिवेशिक सरकार ने जानबूझकर भारतीय रुपये का मूल्य ब्रिटिश पाउंड के मुकाबले ऊंचा रखा (1 शिलिंग 6 पेंस)। इससे ब्रिटेन से भारत आने वाला आयात सस्ता हो गया और भारत से होने वाला निर्यात महंगा हो गया, जिसने भारतीय विनिर्माण की कमर तोड़ दी।

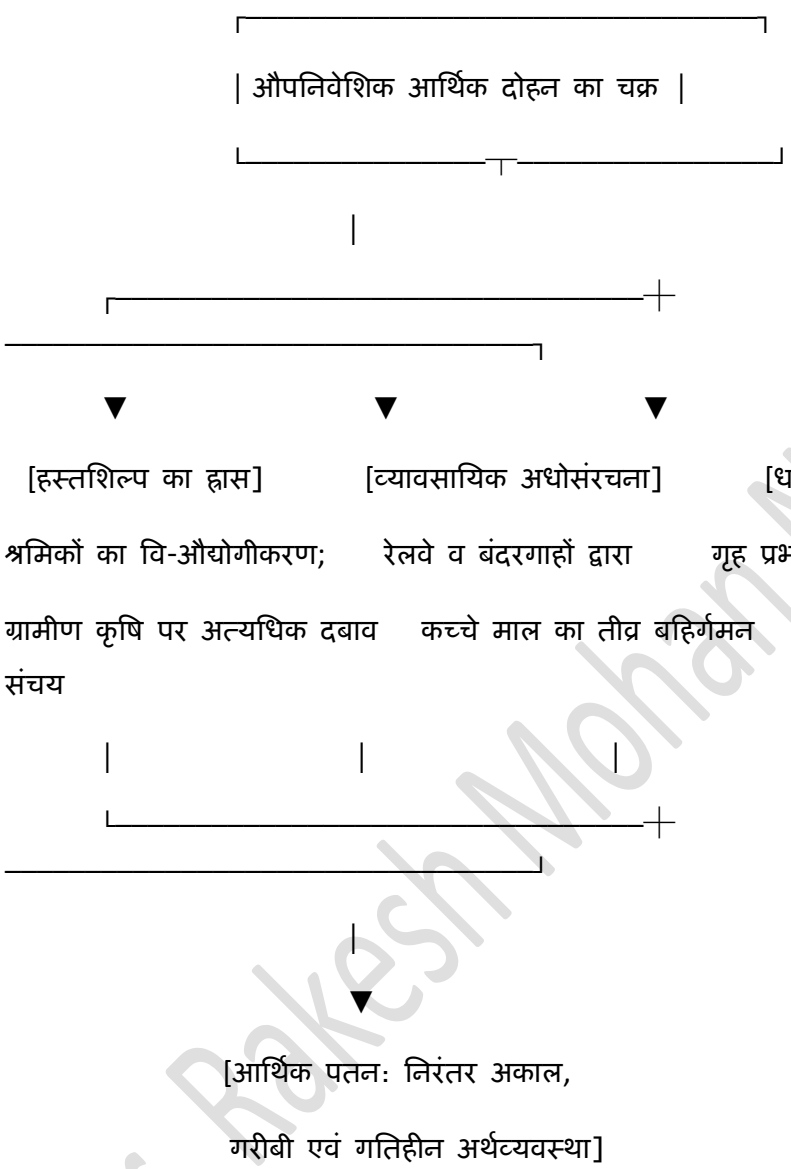
- **पूंजीगत वस्तु उद्योग (Capital Goods Industry) का अभाव:**

भारत में मशीनों, औजारों, भारी रसायनों और विद्युत उपकरणों को बनाने वाले उद्योग नहीं थे। भारत पूरी तरह से ब्रिटेन से मशीनें आयात करने पर निर्भर था। किसी भी वास्तविक औद्योगिक क्रांति के लिए आवश्यक 'मशीनों को बनाने वाली मशीनरी' का विकास औपनिवेशिक शासन ने कभी नहीं होने दिया।

6. भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र पतन एवं शोषण का ढांचा

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं—हस्तशिल्प का विनाश, एकतरफा रेलवे नेटवर्क, भेदभावपूर्ण सिंचाई और सीमित औद्योगीकरण—ने मिलकर भारतीय अर्थव्यवस्था को एक गहन संरचनात्मक संकट में धकेल दिया।



'धन की निकासी' का सिद्धांत (Drain of Wealth)

19वीं सदी के अंत में भारतीय राष्ट्रवादी विचारकों ने ब्रिटिश शासन के "कल्याणकारी" मुखौटे को उतार फेंका। **दादाभाई नौरोजी** ने 1867 में अपनी पुस्तक *'पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया'* में 'धन की निकासी' की अवधारणा प्रस्तुत की।

नौरोजी के अनुसार:

"भारत का धन एक निरंतर बहती हुई धारा की तरह ब्रिटेन की ओर जा रहा है, जिसके बदले में भारत को कोई भौतिक या आर्थिक प्रतिफल प्राप्त नहीं होता।"

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस निकासी के प्रमुख घटक थे:

1. **गृह प्रभार (Home Charges):** लंदन में स्थित 'इंडिया ऑफिस' और भारत सचिव (Secretary of State) का संपूर्ण प्रशासनिक व्यय।
2. **ऋण पर ब्याज:** रेलवे निर्माण, सिंचाई नहरों और युद्धों के लिए ब्रिटिश निवेशकों से लिए गए सार्वजनिक ऋणों पर भारी ब्याज।
3. **वेतन और पेंशन:** भारत में सेवारत ब्रिटिश सैन्य और असैनिक अधिकारियों के वेतन, भत्ते और सेवानिवृत्ति के बाद पाउंड में दी जाने वाली पेंशन।
4. **निजी धन प्रेषण:** विदेशी व्यापारियों, बागान मालिकों और डॉक्टरों द्वारा अपनी बचत को ब्रिटेन भेजना।

आर. सी. दत्त ने अपनी पुस्तक *'द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया'* में लिखा कि भारत के कुल राजस्व का लगभग एक-चौथाई भाग हर वर्ष देश से बाहर बहा दिया जाता था। इस निरंतर पूंजी पलायन के कारण भारत में आंतरिक पूंजी निर्माण (Capital Accumulation) असंभव हो गया, जो किसी भी राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिए बुनियादी शर्त होती है।

आर्थिक पतन के सांख्यिकीय साक्ष्य

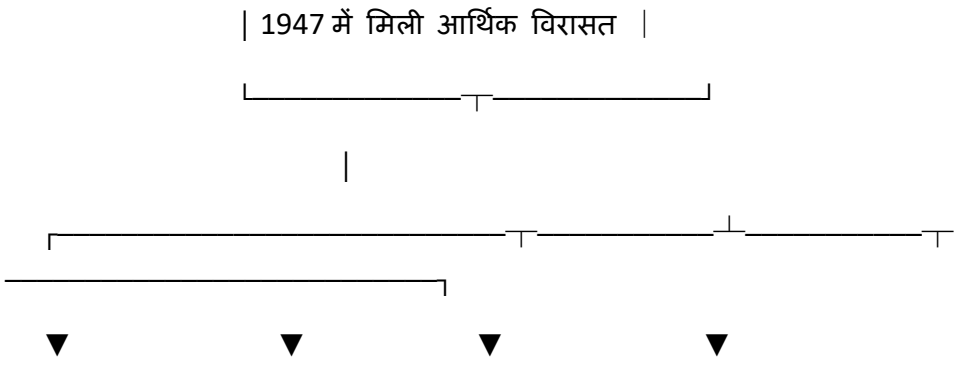
औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारतीय आर्थिक पतन कोई भावात्मक आरोप नहीं था, बल्कि इसके ठोस सांख्यिकीय प्रमाण उपलब्ध हैं:

- **प्रति व्यक्ति आय में गतिहीनता:** प्रख्यात अर्थशास्त्री वी. के. आर. वी. राव और फेंडले शिराज़ के अनुसंधानों से स्पष्ट हुआ कि 1860 से 1940 के बीच भारत की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या तो स्थिर रही या उसमें नाममात्र (0.5% प्रति वर्ष से भी कम) की वृद्धि हुई।
- **जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy):** 1931-1941 के दशक में भारत में एक सामान्य नागरिक की औसत जीवन प्रत्याशा मात्र **32 वर्ष** थी, जो चरम कुपोषण, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव और लगातार महामारियों का प्रत्यक्ष प्रमाण थी।
- **अकालों का तांडव:** ब्रिटिश काल में अकाल प्राकृतिक आपदा से अधिक "मानव-निर्मित प्रशासनिक विफलता" बन गए थे। 1770 के बंगाल अकाल से लेकर 1943 के बंगाल अकाल तक लगभग 3 से 4 करोड़ भारतीय भुखमरी की भेंट चढ़ गए।

7. निष्कर्ष एवं स्वतंत्रता के समय प्राप्त आर्थिक विरासत

15 अगस्त 1947 को जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो उसे विरासत में एक समृद्ध सभ्यता नहीं, बल्कि एक लहूलुहान, क्षत-विक्षत और **संरचनात्मक रूप से दुर्बल अर्थव्यवस्था** मिली।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal



[वि-औद्योगीकृत ढांचा] [कृषि पर असंतुलित भार] [पूंजीगत उद्योगों का अभाव] [अत्यधिक क्षेत्रीय असमानता]

पारंपरिक शिल्प मृत; कार्यबल का 75-80% भाग मशीन निर्माण, धातु व कुछ बंदरगाह शहर विकसित;

आधुनिक क्षेत्र केवल 2% कृषि में फंसा (प्रच्छन्न ऊर्जा में भारी विदेशी विशाल ग्रामीण अंतःक्षेत्र

जीडीपी में हिस्सेदार बेरोज़गारी) निर्भरता अंधकार में डूबा

औपनिवेशिक शासन के दो सौ वर्षों का कुल आर्थिक लेखा-जोखा निम्नलिखित वास्तविकताओं को दर्शाता है:

1. **पारंपरिक हस्तशिल्प का ह्रास** केवल एक आर्थिक क्षति नहीं थी, बल्कि इसने भारत की सदियों पुरानी उत्पादन प्रणाली, सामाजिक ताने-बाने और कुशल मानव-संसाधन को नष्ट कर दिया। लाखों कारीगर बिना किसी आधुनिक वैकल्पिक रोज़गार के कृषि क्षेत्र में धकेल दिए गए।
2. **सिंचाई और रेलवे जैसी अधोसंरचनाओं का विकास** भारत के समग्र सामाजिक उत्थान के लिए नहीं, बल्कि औपनिवेशिक साम्राज्य की सामरिक सुरक्षा और कच्चे माल के तीव्रतम दोहन के लिए किया गया था। रेलवे ने आधुनिकता के कुछ बीज अवश्य बोए, किंतु इसकी भाड़ा नीति और ट्रंक नेटवर्क ने भारतीय उद्योगों की तुलना में ब्रिटिश माल को अधिक लाभ पहुंचाया।
3. **आधुनिक औद्योगिक विकास** अत्यंत धीमा, सीमित और कुछ चुनिंदा क्षेत्रों (वस्त्र, जूट, सीमित इस्पात) तक ही सीमित रहा। औपनिवेशिक सरकार ने मशीन निर्माण और भारी पूंजीगत वस्तु उद्योगों को कभी पनपने नहीं दिया, जिसके कारण स्वतंत्र भारत को अपनी बुनियादी ज़रूरतों के लिए भी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा।

यही कारण था कि स्वतंत्रता के उपरांत स्वतंत्र भारत के योजनाकारों (जवाहरलाल नेहरू, पी. सी. महालनोबिस आदि) ने 'मिश्रित अर्थव्यवस्था', भारी उद्योगों की स्थापना, भूमि सुधार और बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं (भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी) पर विशेष बल दिया, ताकि औपनिवेशिक शोषण के इन

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

ऐतिहासिक घावों को भरकर भारत को पुनः एक आत्मनिर्भर और औद्योगिक रूप से सशक्त राष्ट्र के रूप में स्थापित किया जा सके।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

कंपनी के शासन का लोकप्रिय विरोध-किसान और आदिवासी आंदोलन।

1. प्रस्तावना: कंपनी राज का औपनिवेशिक चरित्र और जन-असंतोष का उद्भव

1757 में प्लासी के युद्ध और 1764 में बक्सर के निर्णायक संघर्ष के उपरांत ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया। 1765 की इलाहाबाद की संधि द्वारा जब कंपनी को बंगाल, बिहार और ओडिशा की 'दीवानी' (राजस्व वसूली का वैधानिक अधिकार) प्राप्त हुई, तो भारतीय समाज के इतिहास में एक अप्रत्याशित और विध्वंसकारी युग का सूत्रपात हुआ। पूर्ववर्ती शासकों—चाहे वे मुग़ल हों, मराठे हों या स्थानीय सूबेदार—की तुलना में ईस्ट इंडिया कंपनी का बुनियादी चरित्र नितांत भिन्न था। वह किसी देशज व्यवस्था का अंग बनने नहीं आई थी; उसका एकमात्र उद्देश्य था: भारत के संसाधनों का अधिकतम दोहन कर उसे ब्रिटेन के औद्योगिक और वित्तीय हितों की वेदी पर न्योछावर करना।

कंपनी के शासन ने भारत के उस पारंपरिक ग्राम-समुदाय की नींव हिला दी, जिसे सदियों से एक आत्मनिर्भर और स्वायत्त आर्थिक इकाई माना जाता था। कंपनी की आर्थिक नीतियों ने सदियों पुरानी कृषि प्रणाली, भूमि संबंधों, वनों के उपयोग और ग्रामीण दस्तकारी को तहस-नहस कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, भारतीय समाज का सबसे बड़ा और सबसे शोषित वर्ग—किसान और वनवासी (आदिवासी)—विनाश के कगार पर पहुंच गया।

[औपनिवेशिक राज्य: अधिकतम राजस्व की मांग]

|

▼

[पारंपरिक भूमि व वनाधिकारों का विघटन]

|

▼

[अकाल, बेदखली, ऋणग्रस्तता एवं शोषण]

|

▼

[लोकप्रिय सशस्त्र प्रतिरोध: किसान और आदिवासी आंदोलन]

सबाल्टर्न दृष्टिकोण और इतिहासलेखन की सीमाएं

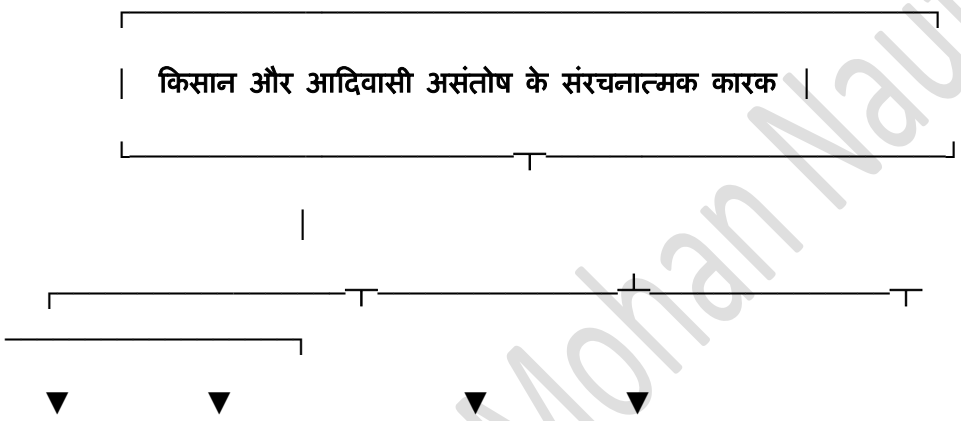
लंबे समय तक औपनिवेशिक इतिहासकारों (जैसे जेम्स मिल, विन्सेंट स्मिथ) ने इन आंदोलनों को महज़ "कानून-व्यवस्था का संकट", "लुटेरों और डकैतों का उपद्रव" या "असभ्य जनजातियों की अकारण बर्बरता" कहकर खारिज किया। दूसरी ओर, कुछ प्रारंभिक राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इन आंदोलनों को केवल 1857 के सिपाही विद्रोह के गौण पूर्वगामी के रूप में देखा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

किंतु 1980 के दशक में रणजीत गुहा, गौतम भद्र और ज्ञानेंद्र पांडे जैसे सबाल्टर्न (निम्नवर्गीय) इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया कि भारत के किसानों और आदिवासियों का प्रतिरोध किसी बाह्य संभ्रांत वर्ग की प्रेरणा का मोहताज नहीं था। उनके पास अपनी स्वतंत्र राजनीतिक चेतना, न्याय की अपनी पारम्परिक अवधारणाएं और शोषण के विरुद्ध विद्रोह का अपना स्वायत्त दर्शन था। कंपनी शासन का पहला सौ वर्ष (1757 से 1857) शांत औपनिवेशिक विस्तार का काल नहीं था; यह लगातार भड़कते हुए किसान और आदिवासी विद्रोहों का रक्त-रंजित इतिहास था, जिसने ब्रिटिश सत्ता की जड़ों को बार-बार हिला कर रख दिया।

2. जन-विद्रोहों के मूलभूत संरचनात्मक कारण

कंपनी शासन के विरुद्ध किसानों और आदिवासियों का असंतोष किसी एक तात्कालिक घटना की उपज नहीं था, बल्कि यह औपनिवेशिक राज्य द्वारा थोपी गई बहुआयामी संस्थागत हिंसा का परिणाम था।



[अत्यधिक भू-राजस्व] [साहूकार-अदालत गठजोड़] ['दिक्कू' एवं वन विनाश] [सांस्कृतिक प्रहार]

सूर्यास्त कानून, ब्याज दर 50-100%, पारंपरिक वनाधिकारों का ईसाई मिशनरियां,

जबरन नकद वसूली, भूमि का हस्तांतरण, अपहरण, बाहरी व्यापारियों पारंपरिक प्रथाओं

अमानवीय प्रताड़ना अदालती डिक्री व बेदखली द्वारा अनियंत्रित लूट में मनमाना हस्तक्षेप

(क) नई भू-राजस्व व्यवस्थाएं और किसानों का विस्थापन

कंपनी ने राजस्व में अधिकतम वृद्धि के लिए पारंपरिक प्रणालियों को उलट दिया:

- अत्यधिक और कठोर मांग: स्थायी बंदोबस्त (1793), रैयतवाड़ी (1820) और महालवाड़ी (1833) के माध्यम से राज्य ने भूमि की वास्तविक उत्पादकता की परवाह किए बिना लगान की दरें 50% से 66% तक तय कर दीं।
- मुद्रीकरण (Monetization) और निश्चित तिथियां: लगान अब उपज के हिस्से (अनाज) के रूप में नहीं, बल्कि नकद मुद्रा में और निश्चित तारीख को देना अनिवार्य था। यदि फसल सूखे या बाढ़ से नष्ट भी हो जाती, तब भी लगान में कोई रियायत नहीं मिलती थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- भूमि का पण्यीकरण (Commodification of Land): कंपनी ने भूमि को निजी और बिक्री-योग्य संपत्ति बना दिया। जो किसान लगान नहीं दे पाते थे, उनकी पुश्तैनी ज़मीनें नीलाम कर दी जाती थीं।

(ख) ग्रामीण ऋणग्रस्तता और 'दिक्कू-साहूकार-अदालत' त्रिकोण

लगान की नकद मांग ने किसान और आदिवासी को स्थानीय साहूकार (महाजन/बनिया) के चंगुल में धकेल दिया:

- साहूकार 50% से 100% तक की चक्रवृद्धि ब्याज दर वसूलते थे। अनपढ़ किसानों से कोरे कागजों पर अंगूठे लगवाए जाते थे और बही-खातों में फर्जी प्रविष्टियां की जाती थीं।
- कंपनी की नई दीवानी अदालतें और पुलिस तंत्र पूरी तरह से साहूकारों और ज़मींदारों के पक्ष में खड़े थे। अंग्रेजों के संविदा कानून (Contract Law) ने साहूकारों को किसान की ज़मीन, बैल और घरेलू संपत्ति की कुर्की कराने का कानूनी अधिकार दे दिया।
- जनजातीय क्षेत्रों में इन बाहरी शोषकों—साहूकारों, व्यापारियों, पुलिस अधिकारियों और कर-संग्राहकों—को सामूहिक रूप से 'दिक्कू' (Diku) कहा गया। दिक्कू केवल बाहरी व्यक्ति नहीं था, बल्कि वह शोषण और सांस्कृतिक विनाश का मूर्त प्रतीक था।

(ग) पारंपरिक वन अधिकारों का हनन

आदिवासियों के लिए जंगल केवल लकड़ी का स्रोत नहीं था; वह उनका आध्यात्मिक आवास, भोजन (कंद-मूल, महुआ), चारागाह और जीवन का आधार था। कंपनी ने वनों पर राज्य के संप्रभु नियंत्रण की घोषणा की।

- जनजातियों द्वारा सदियों से की जा रही स्थानांतरित कृषि (झूम, पोडू, बेवर) को अवैध घोषित कर दिया गया, क्योंकि इससे राज्य को कर नहीं मिलता था और रेलवे व जहाजों के लिए आवश्यक इमारती लकड़ी (साल और सागौन) नष्ट होती थी।
- आदिवासियों के वनोपज इकट्ठा करने और मवेशी चराने पर भारी कर लगा दिए गए। जो आदिवासी वनों के स्वामी थे, वे रातों-रात अपनी ही भूमि पर 'अतिक्रमणकारी' घोषित कर दिए गए और उन्हें ठेकेदारों के अधीन बेगार (मुफ्त श्रम) करने के लिए विवश किया गया।

(घ) सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था में हस्तक्षेप

1813 के चार्टर एक्ट के बाद भारत में ईसाई मिशनरियों को धर्मप्रचार की खुली छूट दी गई। जनजातीय और ग्रामीण क्षेत्रों में मिशनरियों द्वारा किए जाने वाले धर्म-परिवर्तन, पारंपरिक रीति-रिवाजों (जैसे खोंडों में 'मरिहा' या नरबलि प्रथा) पर प्रशासनिक रोक और पुलिस द्वारा जनजातीय संप्रभुता के अपमान ने आदिवासियों

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

के मन में यह आशंका भर दी कि विदेशी सत्ता उनके धर्म, स्वाभिमान और संस्कृति को समूल नष्ट करने पर तुली है।

3. कंपनी कालीन प्रमुख किसान आंदोलन (1765–1857)

1857 से पूर्व के किसान आंदोलनों का चरित्र केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं था; उनमें गहरी सामाजिक और धार्मिक चेतना भी अंतर्निहित थी।

(क) संन्यासी और फ़कीर विद्रोह (1770–1820 के दशक)

प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद कंपनी शासन के विरुद्ध सबसे पहला और दीर्घकालिक जन-विद्रोह 'संन्यासी और फ़कीर विद्रोह' था, जो मुख्य रूप से उत्तरी बंगाल (ढाका, रंगपुर, दिनाजपुर, मालदा) और बिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों में फैला।

[1770 का भीषण बंगाल अकाल] ──► [लाखों किसानों की मृत्यु व भुखमरी]

|

▼

[कंपनी द्वारा कठोर लगान वसूली + तीर्थ यात्राओं पर भारी कर]

|

▼

[उजड़े हुए किसान + मदारी फ़कीर + दसनामी संन्यासी]

|

▼

[साझा सशस्त्र विद्रोह: कंपनी की कोठियों व खजानों पर छापामार हमले]

- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: 1770 के बंगाल के महा-अकाल में लगभग एक-तिहाई आबादी काल के गाल में समा गई। इसके बावजूद कंपनी ने लगान वसूली में 10% की बढ़ोतरी कर दी। इसी समय अंग्रेजों ने हिंदू संन्यासियों (दसनामी संप्रदाय के गिरि व पुरी नागा) और मुस्लिम फ़कीरों (मदारी सूफी सिलसिला) के पारंपरिक तीर्थ स्थलों की यात्रा पर दमनकारी 'तीर्थकर' लगा दिया।
- गठबंधन और नेतृत्व: यह आंदोलन हिंदू-मुस्लिम साझी चेतना का अनुपम उदाहरण था। इसका नेतृत्व मजनू शाह, चिराग अली, भवानी पाठक और एक वीरांगना देवी चौधरानी ने किया। इन विद्रोही संन्यासियों और फ़कीरों के साथ वे हज़ारों किसान, विघटित सेनाओं के बेरोज़गार सैनिक और कारीगर जुड़ गए जो अकाल और कंपनी की लूट से दाने-दाने को मोहताज थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- संघर्ष का स्वरूप: विद्रोहियों ने कंपनी की व्यापारिक फैक्ट्रियों, धन से भरे सरकारी खजानों और अंग्रेजों के पिट्ठू ज़मींदारों पर छापामार हमले किए और लूटा गया धन व अनाज भूखे किसानों में बांट दिया।

- वारेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए सेना की पूरी ताकत झोंक दी। यद्यपि 19वीं सदी के आरंभ तक यह आंदोलन दबा दिया गया, किंतु इसने औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध जन-प्रतिरोध की अमर गाथा लिखी। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का प्रसिद्ध उपन्यास *'आनंदमठ'* (जिससे राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्' लिया गया) और *'देवी चौधरानी'* इसी संन्यासी विद्रोह की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं।

(ख) रंगपुर और दिनाजपुर का कृषक विद्रोह (1783)

यह विशुद्ध रूप से कंपनी की भ्रष्ट 'इजारेदारी प्रथा' (ठेके पर लगान वसूली की व्यवस्था) के विरुद्ध उपजा कृषक असंतोष था।

- कारण: वारेन हेस्टिंग्स ने अधिकतम राजस्व वसूलने के लिए बंगाल के ज़िलों को सबसे ऊंची बोली लगाने वाले ठेकेदारों को सौंप दिया था। रंगपुर और दिनाजपुर का ठेका देवी सिंह नामक एक क्रूर इज़ारेदार को दिया गया। देवी सिंह ने किसानों पर अकल्पनीय अत्याचार किए—किसानों को कोड़ों से पीटा गया, उनके बच्चों और महिलाओं को बंधक बनाया गया और खड़ी फसलें छीन ली गईं।

- विद्रोह का स्वरूप: 1783 में रंगपुर के किसानों ने अपनी एक समानांतर सरकार की स्थापना की। उन्होंने धीरजनारायण को अपना नेता चुना और 'नवाब' घोषित किया तथा कृपानाथ को अपना दीवान बनाया। किसानों ने कंपनी को किसी भी प्रकार का कर देने से मना कर दिया और स्थानीय कचहरियों पर अधिकार कर लिया।

- यद्यपि कंपनी की सेना ने क्रूरतापूर्वक इस विद्रोह को कुचल दिया, किंतु इस जन-उभार की भयावहता को देखकर ब्रिटिश संसद को अपनी राजस्व नीति पर पुनर्विचार करना पड़ा, जिसने आगे चलकर 1793 के 'स्थायी बंदोबस्त' की पृष्ठभूमि तैयार की।

(ग) फराज़ी आंदोलन (1838–1857)

पूर्वी बंगाल (फरीदपुर, बाकरगंज, मैमनसिंह) में उभरा फराज़ी आंदोलन धार्मिक सुधार के रूप में आरंभ होकर एक उग्र किसान संघर्ष में बदल गया।

- संस्थापक एवं वैचारिक आधार: इस आंदोलन की शुरुआत हाजी शरीअतुल्लाह ने इस्लाम के शुद्धिकरण (फराज़ अर्थात ईश्वर द्वारा अनिवार्य किए गए कर्तव्य) के उद्देश्य से की थी। किंतु उनके पुत्र मुहम्मद मोहसिन उर्फ 'दूदू मियां' (Dudu Miyan) ने इसे एक क्रांतिकारी कृषक संगठन में बदल दिया।

- क्रांतिकारी कृषक सिद्धांत: दूदू मियां ने यह मूलभूत घोषणा की कि:

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

"समस्त भूमि ईश्वर (अल्लाह) की है; अतः किसी भी ज़मींदार को उस पर लगान वसूलने या उपकर (आबवाब) थोपने का कोई नैतिक या वैधानिक अधिकार नहीं है।"

- संगठन: दूदू मियां ने पूरे पूर्वी बंगाल को हल्कों (सर्किलों) में बांटा और प्रत्येक हल्के में एक 'मियानी' (ग्राम प्रमुख) नियुक्त किया। उन्होंने किसानों से कंपनी की अदालतों का बहिष्कार करने और अपने विवाद फराज़ी पंचायतों में सुलझाने का आह्वान किया।
- फराज़ियों ने नीलहे गोरों (Indigo Planters) और ज़मींदारों की हवेलियों पर संगठित लाठीधारी दस्तों के साथ हमले किए। 1857 के बाद यह आंदोलन धीरे-धीरे वहाबी आंदोलन की मुख्यधारा में विलीन हो गया।

(घ) मालाबार के मोपला (माप्पिला) विद्रोह (1836–1854)

दक्षिण भारत में मद्रास प्रेसीडेंसी के अंतर्गत मालाबार तट (वर्तमान केरल) पर मोपला किसानों ने कंपनी शासन के पहले पचास वर्षों में ही लगातार 22 से अधिक बार विद्रोह का झंडा बुलंद किया।

- सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि: मोपला मुख्य रूप से अरब व्यापारियों और स्थानीय महिलाओं के वंशज तथा इस्लाम अपनाने वाले निम्न-जातीय धर्म-परिवर्तित गरीब काश्तकार और खेतिहर मज़दूर थे। दूसरी ओर, ज़मीन के अधिकांश बड़े स्वामी (जिन्हें जेन्मी कहा जाता था) उच्च-जातीय हिंदू (नंबूदरी और नायर) थे।
- 1792 में जब अंग्रेजों ने टीपू सुल्तान को पराजित कर मालाबार पर अधिकार किया, तो उन्होंने जेन्मियों को भूमि के पूर्ण और अनियंत्रित स्वामी के रूप में मान्यता दे दी। अंग्रेजों के संरक्षण में जेन्मियों ने मोपला काश्तकारों के पारंपरिक अधिकारों को छीन लिया, उन्हें मनमाने ढंग से ज़मीन से बेदखल किया और अत्यधिक लगान थोप दिया।
- संघर्ष का स्वरूप: जब भी कोई जेन्मी किसी मोपला किसान को ज़मीन से बेदखल करता या अपमानित करता, तो मोपला युवा आत्मघाती दस्तों के रूप में संगठित होकर जेन्मियों और ब्रिटिश अधिकारियों पर हमला कर देते थे। वे इसे औपनिवेशिक उत्पीड़न के विरुद्ध एक धार्मिक कर्तव्य मानते थे। ब्रिटिश सरकार ने 1850 के दशक में 'मोपला आउटरेज एक्ट' पारित कर इस क्षेत्र में विशेष दमनकारी पुलिस बल तैनात किया।

(ङ) पागलपंथी विद्रोह (1825–1835)

उत्तरी बंगाल के मैमनसिंह ज़िले में 'पागलपंथी' संप्रदाय ने स्थानीय गारो, हाजोंग और मुस्लिम किसानों को संगठित कर ज़मींदारों के विरुद्ध एक अनूठा समतावादी आंदोलन चलाया।

- नेतृत्व: इस अर्ध-धार्मिक संप्रदाय की स्थापना करम शाह ने की थी। उनके पुत्र टीपू शाह (टीपू मस्तान) ने इसे एक शक्तिशाली किसान आंदोलन का रूप दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- मांगें: टीपू शाह ने घोषणा की कि सभी मनुष्य समान हैं और ज़मींदारों द्वारा किसानों से वसूला जाने वाला अवैध कर ईश्वर के नियमों के विरुद्ध है। 1825 में हज़ारों पागलपंथी किसानों ने हथियारों के साथ ज़मींदारों की कचहरियों पर अधिकार कर लिया और शेरपुर के दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया।
- टीपू शाह ने शेरपुर में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की और स्वयं को राजा घोषित कर न्याय व्यवस्था संचालित की। कंपनी सरकार को इस आंदोलन को दबाने के लिए बड़े पैमाने पर नियमित सैन्य अभियान चलाना पड़ा।

4. कंपनी कालीन प्रमुख आदिवासी (जनजातीय) आंदोलन

यदि किसान आंदोलनों का मुख्य आधार लगान और बेदखली का विरोध था, तो आदिवासी आंदोलनों का चरित्र उससे भी अधिक व्यापक और उग्र था। आदिवासियों के लिए यह लड़ाई केवल आर्थिक शोषण के विरुद्ध नहीं थी, बल्कि यह उनकी संप्रभुता, अस्मिता और स्वशासन की रक्षा का महासंग्राम था।

(क) चुआर और ढाल विद्रोह (1766–1800 के दशक)

ब्रिटिश सत्ता को सबसे पहली कड़ी जनजातीय चुनौती बंगाल के दक्षिण-पश्चिमी सीमांत (मिदनापुर, बांकुरा, मानभूम—जिसे 'जंगल महल' कहा जाता था) में मिली।

[जंगल महल का सैन्य-कृषक समाज: चुआर / पाइक]

|

▼

[अंग्रेजों द्वारा पाइकन ज़मीनों की जब्ती + वनों पर कर]

|

▼

[पारंपरिक राजाओं (जगन्नाथ ढाल, दुर्जन सिंह) का नेतृत्व]

|

▼

[व्यापक गुरिल्ला युद्ध: कंपनी के थानों व कचहरियों का ध्वंस]

- ऐतिहासिक संदर्भ: स्थानीय भूमिज और संथाल आदिवासियों को अंग्रेज़ हेय दृष्टि से 'चुआर' (नीच या बर्बर) कहते थे। ये लोग पारंपरिक रूप से स्थानीय ज़मींदारों के यहां सिपाही (जिन्हें 'पाइक' कहा जाता था) का कार्य करते थे और बदले में उन्हें लगान-मुक्त 'पाइकन भूमि' प्राप्त थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- विद्रोह का कारण: स्थायी बंदोबस्त लागू करने के बाद कंपनी ने राजस्व न चुकाने वाले स्थानीय राजाओं की ज़मींदारियां नीलाम कर दीं और पाइकन ज़मीनों पर भारी कर लगा दिया। साथ ही, पारंपरिक पाइकों को हटाकर बाहर से ब्रिटिश पुलिस बल तैनात कर दिया गया।
- विद्रोह के चरण:
    - 1767 में धलभूम के राजा जगन्नाथ ढाल ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। उन्होंने घोषणा की कि वे विदेशियों को एक पाई भी कर नहीं देंगे।
    - 1798-99 में यह विद्रोह अपने चरम पर पहुंचा, जब रायपुर के अपदस्थ ज़मींदार दुर्जन सिंह और उनके साथियों ने 1,500 से अधिक चुआरों के साथ मिलकर मिदनापुर और बांकुरा में कंपनी के थानों को फूंक दिया और सरकारी ख़ज़ाने लूट लिए।
- स्थिति इतनी विकट हो गई कि अंग्रेजों को अंततः 1805 में विवश होकर 'रेग्युलेशन XVIII' के तहत इन क्षेत्रों को मिलाकर एक अलग प्रशासनिक ज़िला 'जंगल महल' बनाना पड़ा और पाइकों के पारंपरिक अधिकारों को आंशिक रूप से बहाल करना पड़ा।

(ख) पहाड़िया विद्रोह और बाबा तिलका मांझी (1778–1785)

बिहार और झारखंड की सीमा पर स्थित राजमहल की पहाड़ियों में रहने वाली पहाड़िया (सौरिया पहाड़िया) जनजाति ने ब्रिटिश घुसपैठ के विरुद्ध अभूतपूर्व संघर्ष किया।

- पहाड़िया लोग अपनी पहाड़ियों में स्वतंत्र रहते थे और जंगलों के उत्पादों पर निर्भर थे। जब अंग्रेजों ने उनके जंगलों को काटकर कृषि भूमि में बदलने और बाहरी लोगों को वहां बसाने का प्रयास किया, तो पहाड़िया योद्धाओं ने औपनिवेशिक चौकियों पर हमले शुरू कर दिए।
- अगस्टस क्लीवलैंड की नीति: भागलपुर के कलेक्टर क्लीवलैंड ने पहाड़िया सरदारों को मासिक पेंशन (घूस) देकर और एक 'पहाड़िया हिल तीरंदाजी रेजिमेंट' बनाकर उन्हें अपने अधीन करने का कूटनीतिक प्रयास किया।
- तिलका मांझी (जबरा पहाड़िया) का विद्रोह: संथाल और पहाड़िया परंपरा के महान नायक तिलका मांझी ने अंग्रेजों की इस 'फूट डालो और राज करो' नीति को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने 1780 के दशक में भागलपुर और सुल्तानगंज के जंगलों से अंग्रेजों के विरुद्ध छापामार युद्ध छेड़ दिया।
- 1784 में तिलका मांझी ने एक पेड़ पर छिपकर अपने ज़हरीले तीर से कलेक्टर क्लीवलैंड को मार गिराया। इसके बाद अंग्रेजों ने जनरल आयरकूट के नेतृत्व में भारी सेना भेजी। 1785 में तिलका मांझी को पकड़ लिया गया और भागलपुर में एक बरगद के पेड़ से लटकाकर उन्हें सार्वजनिक रूप से फांसी दे दी गई। वे ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध फांसी पर चढ़ने वाले भारत के पहले आदिवासी महानायक थे।

Dr. Rakesh Mohan Nartiyal

(ग) कोल विद्रोह (1831–1832)

छोटानागपुर (रांची, सिंहभूम, पलामू, मानभूम और हज़ारीबाग) के क्षेत्र में 1831-32 में भड़का 'कोल विद्रोह' कंपनी कालीन भारत का सबसे सुनियोजित और भीषण आदिवासी महाविद्रोह था। इसमें मुख्य रूप से हो, मुंडा और उरांव जनजातियों ने भाग लिया, जिन्हें बाहरी लोग 'कोल' कहते थे।

[छोटानागपुर में पारंपरिक 'पड़हा' व 'मानकी' व्यवस्था]

|

▼

[ब्रिटिश संरक्षण में सिख व मुस्लिम व्यापारियों/साहूकारों का प्रवेश]

|

▼

[आदिवासी भूमि की जब्ती + आबकारी कर + महिलाओं का अपमान]

|

▼

[बुद्धू भगत, जोआ भगत व मदारा महतो का आह्वान: 'कोल विद्रोह']

|

▼

[हज़ारों आदिवासियों का तीर-कमानों के साथ आक्रमण]

- **शोषण का तंत्र: छोटानागपुर के महाराजा ने बाहरी गैर-आदिवासियों (सिख, मुस्लिम और मारवाड़ी व्यापारियों) को लगान वसूली के पट्टे (इज़ारे) दे दिए थे। इन बाहरी 'दिक्कुओं' ने आदिवासियों की पारंपरिक सामूहिक भूमि व्यवस्था को नष्ट कर दिया। इसके अतिरिक्त, आदिवासियों पर उनकी पारंपरिक चावल की शराब (हंड़िया) बनाने पर 'पचवई' (आबकारी कर) लगा दिया गया और उनसे बेगार कराई गई।**
- **विद्रोह का विस्फोट: तात्कालिक चिंगारी तब भड़की जब बंदगांव में एक मुस्लिम इज़ारेदार द्वारा कोल महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया और सोनपुर के मानकी की ज़मीनें छीनकर बाहरी लोगों को दे दी गईं। 1831 में तमाड़ और सोनपुर के मानकियों ने तीर-कमान लेकर विद्रोह का बिगुल फूंक दिया।**
- **नेतृत्व और विस्तार: इस विद्रोह का नेतृत्व बुद्धू भगत, जोआ भगत, मदारा महतो और बिंदराय मानकी ने किया। विद्रोहियों ने 'दिक्कुओं' के घरों को जला दिया, कचहरियों को ध्वस्त कर दिया और ब्रिटिश**

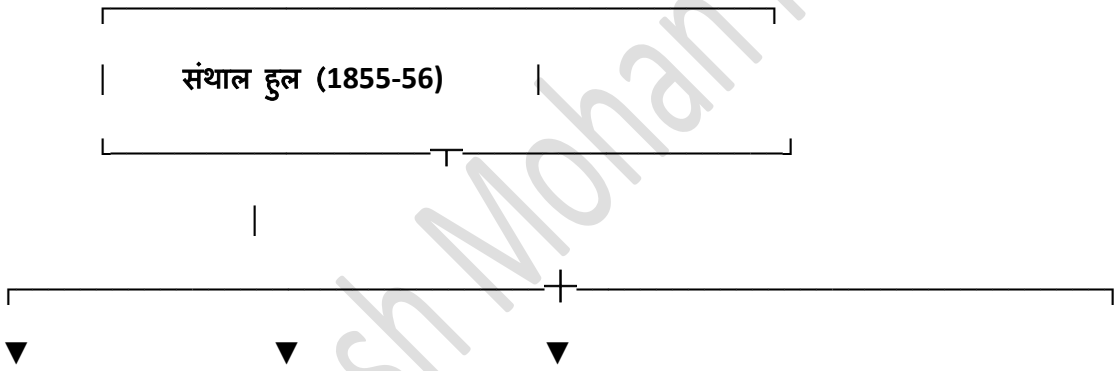
Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

अधिकारियों को मार भगाया। बुद्धू भगत ने अपने सैकड़ों अनुयायियों के साथ सिलगाई (रांची) में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की।

- प्रशासनिक प्रभाव: इस विद्रोह को कुचलने के लिए कंपनी को बनारस और दानापुर से सेना बुलानी पड़ी। महीनों चले भीषण रक्तपात के बाद आंदोलन दबा। इसके पश्चात 1833 में अंग्रेजों ने 'रेग्युलेशन XIII' लागू किया, जिसके तहत छोटानागपुर को सामान्य कानूनों से मुक्त कर एक 'दक्षिण-पश्चिमी सीमांत एजेंसी' (South-Western Frontier Agency - SWFA) बनाई गई और 'विल्किंसन रूल' लागू किया गया, जिसमें मानकी और मुंडाओं की पारंपरिक ग्राम व्यवस्था को प्रशासनिक मान्यता दी गई।

(घ) संथाल 'हुल' (1855–1856): स्वतंत्रता का प्रथम महासंग्राम

1857 के सिपाही विद्रोह से ठीक एक वर्ष पूर्व बिहार और बंगाल के सीमांत पर स्थित 'दामिन-ए-कोह' (राजमहल की पहाड़ियों का वन क्षेत्र) में फूटा संथाल विद्रोह औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध भारत का सबसे बड़ा और रक्तरंजित मुक्ति संग्राम था। संथाल भाषा में 'हुल' का अर्थ होता है—'पूर्ण क्रांति' या 'मुक्ति संग्राम'।



[शोषण का त्रिकोण] [मसीहाई दैवीय प्रेरणा] [30 जून 1855: भगनाडीह]

महाजन (50-500% ब्याज) सिद्धू और कान्हू को 'ठाकुर जी' 60,000 संथालों का महासम्मेलन;

दारोगा व पुलिस की क्रूरता (ईश्वर) का साक्षात आदेश: स्वतंत्र संथाल राज्य की घोषणा;

रेलवे ठेकेदारों की बेगार "विदेशी राज समाप्त करो" ज़मींदारों व अफसरों का सफाया

पृष्ठभूमि: दामिन-ए-कोह का निर्माण और शोषण

1832 में अंग्रेजों ने राजमहल की तलहटी में एक विशाल भूभाग को 'दामिन-ए-कोह' घोषित किया और संथालों को वहां बसने के लिए आमंत्रित किया। मेहनती संथालों ने घने जंगलों को काटकर उपजाऊ खेतों में बदल दिया। किंतु जैसे ही ज़मीनें लहलहा उठीं, औपनिवेशिक तंत्र के गिद्ध वहां मंडराने लगे:

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1. साहूकारों (महाजनों) की जालसाज़ी: साहूकारों ने दो तरह के बाट (तराज़ू) रखे थे—खरीदते समय भारी बाट (केनाराम) और अनाज बेचते समय हल्का बाट (बेचाराम)। ब्याज दरें 50% से 500% तक थीं। एक बार जो संथाल कर्ज़ लेता था, उसकी तीन पीढ़ियां साहूकार की बंधुआ बन जाती थीं।
2. दारोगा और कचहरी का आतंक: स्थानीय पुलिस दारोगा (जैसे कुख्यात दारोगा महेश लाल दत्त) पूरी तरह साहूकारों के हाथों बिके हुए थे। संथालों की मामूली शिकायतों पर उल्टे उन्हीं को जेल में ठूंस दिया जाता था।
3. रेलवे ठेकेदारों द्वारा बेगार: भागलपुर से वर्धमान तक रेलवे लाइन बिछाने के काम में लगे यूरोपीय ठेकेदारों ने संथाल पुरुषों से जबरन बेगार कराई और संथाल स्त्रियों का शीलभंग किया।

भगनाडीह का महासम्मेलन और हुल की घोषणा

30 जून 1855 को भगनाडीह गांव में 400 से अधिक गांवों के लगभग 60,000 संथाल एकत्रित हुए। इस ऐतिहासिक सभा में चार मुर्मू भाइयों—सिद्धू, कान्हू, चांद और भैरव—तथा उनकी बहनों फूलो और झानो ने क्रांति का नेतृत्व संभाला।

सिद्धू और कान्हू ने घोषणा की कि उन्हें 'ठाकुर जी' (सर्वोच्च ईश्वर) का साक्षात आदेश प्राप्त हुआ है:

"ठाकुर जी ने हमसे कहा है कि यह ज़मीन हमारी है। अब ज़मींदारों, साहूकारों और अंग्रेज़ साहबों का राज खत्म हो गया है। अब हमारा अपना राज (संथाल राज) स्थापित होगा।"

इस दैवीय आह्वान ने संथालों में एक अदम्य आध्यात्मिक ऊर्जा और निर्भीकता भर दी।

विद्रोह का प्रसार और बर्बर दमन

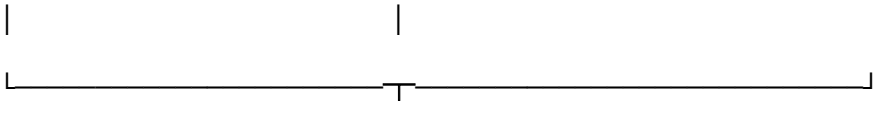
संथाल तीर-कमान, कुल्हाड़ियां और भाले लेकर निकल पड़े। उन्होंने सबसे पहले भ्रष्ट दारोगा महेश लाल दत्त और अत्याचारी महाजनों को मौत के घाट उतारा। विद्रोह देखते ही देखते भागलपुर, बीरभूम, मुर्शिदाबाद और हज़ारीबाग तक फैल गया। संथालों ने डाक और रेलवे संपर्क पूरी तरह काट दिया और स्थानीय ब्रिटिश थानों पर कब्ज़ा कर लिया। मेजर बरो के नेतृत्व में भेजी गई कंपनी की सेना को संथालों ने पीरपैंती के मैदान में करारी शिकस्त दी।

कंपनी सरकार भयभीत हो गई। पूरे क्षेत्र में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। सेनापति कर्नल बर्ड और मेजर जनरल लॉयड के अधीन सेना की 10 से अधिक रेजीमेंटों और तोपखाने को संथालों के विरुद्ध झोंक दिया गया। आधुनिक एनफील्ड बंदूकों और तोपों का मुकाबला संथालों के लकड़ी के तीर-कमान नहीं कर सके।

[सैन्य असमानता]

संथाल विद्रोही		कंपनी की सेना
(तीर-कमान, भाले, कुल्हाड़ी)	vs	(एनफील्ड राइफलें, तोपखाना)

Dr. Rakesh Mohan Nariyal



[ऐतिहासिक असमान संघर्ष]

15,000 से अधिक संथाल वीरों की शहादत;

हज़ारों गांवों को राख के ढेर में बदला गया

ब्रिटिश सेना ने बर्बरता की सारी सीमाएं पार कर दीं। चार्ल्स डिकेंस ने अपनी पत्रिका में लिखा था कि यह कोई युद्ध नहीं था, बल्कि एकतरफा कत्लेआम था। संथाल आत्मसमर्पण करने के बजाय गोलियों के सामने छाती तानकर हंसते-हंसते शहीद हो गए। लगभग 15,000 से 20,000 संथाल मारे गए। दर्जनों गांव जलाकर राख कर दिए गए। चांद और भैरव भागलपुर में लड़ते हुए शहीद हुए, जबकि सिद्धू और कान्हू को पकड़कर 1856 में फांसी दे दी गई।

परिणाम: संथाल परगना का जन्म

विद्रोह के शांत होने के बाद कंपनी सरकार को यह समझ आ गया कि आदिवासियों पर सामान्य औपनिवेशिक कानून थोपना असंभव है। 1855 के अधिनियम 37 द्वारा भागलपुर और बीरभूम के कुछ हिस्सों को काटकर एक गैर-विनियमित ज़िला 'संथाल परगना' (Santhal Pargana) बनाया गया और आगे चलकर 'संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम' (SPT Act) की नींव पड़ी, जिसके तहत गैर-आदिवासियों को आदिवासियों की ज़मीन खरीदने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया।

(ङ) अन्य प्रमुख आदिवासी आंदोलन

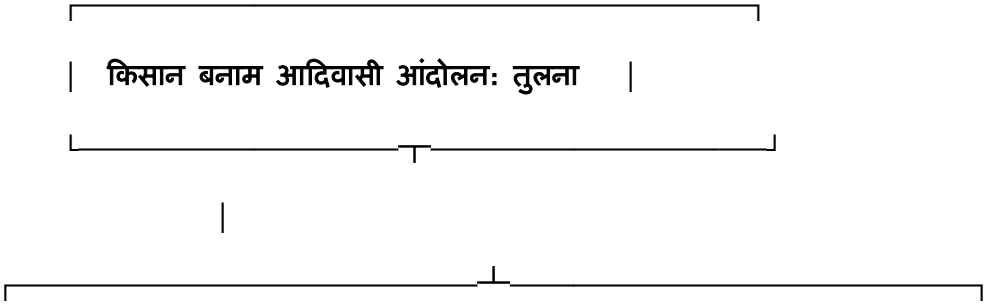
आंदोलन	कालखंड	क्षेत्र	प्रमुख नेता	मुख्य कारण एवं स्वरूप
भील विद्रोह	1818–1831	खानदेश (महाराष्ट्र/गुजरात)	सेवाराम, दशरथ	पेशवा के पतन के बाद कंपनी द्वारा खानदेश पर नियंत्रण, वनाधिकारों की समाप्ति; भीलों ने लंबे समय तक पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में छापामार युद्ध लड़ा।
खोंड विद्रोह	1837–1856	ओडिशा (घुमसुर, कालाहांडी)	चक्र बिसोई	अंग्रेजों द्वारा खोंडों की पारंपरिक 'मरिहा' (मानव बलि) प्रथा पर प्रतिबंध लगाना, नए कर थोपना

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

आंदोलन	कालखंड	क्षेत्र	प्रमुख नेता	मुख्य कारण एवं स्वरूप
				और ज़मींदारों द्वारा जंगलों में घुसपैठ।
खासी विद्रोह	1829–1833	असम व मेघालय (खासी पहाड़ियां)	तीरथ सिंह (यू तीरोत सिंग)	ब्रह्मपुत्र और सुरमा घाटी को जोड़ने के लिए अंग्रेजों द्वारा खासी पहाड़ियों के बीच से जबरन सैन्य सड़क का निर्माण और आदिवासियों से बेगार कराना।
रामोसी विद्रोह	1822, 1825–29	पश्चिमी घाट (सतारा, महाराष्ट्र)	चित्तूर सिंह, उमाजी नाईक	मराठा सेना के विघटन के बाद आजीविका का संकट, भारी भू-राजस्व; उमाजी नाईक ने ब्रिटिश चौकियों पर भीषण हमले किए।
कच्छ व वाघेर विद्रोह	1816–1832	गुजरात (कच्छ एवं ओखा मंडल)	भारमल द्वितीय, जोधा माणेक	बड़ौदा के गायकवाड़ और ब्रिटिश कंपनी के गठजोड़ द्वारा पारंपरिक सामंतों और वाघेर सरदारों के स्वायत्त अधिकारों का दमन।

5. किसान और आदिवासी आंदोलनों का तुलनात्मक एवं संरचनात्मक विश्लेषण

कंपनी कालीन किसान और आदिवासी आंदोलनों में कई समानताएं होने के बावजूद उनके दार्शनिक आधार, सामाजिक संरचना और संघर्ष के तौर-तरीकों में महत्वपूर्ण अंतर थे।



Dr Rakesh Mohan Nautiyal

▼ ▼

[किसान आंदोलन] [आदिवासी आंदोलन]

- मुख्य मुद्दा: लगान, उपकर, बेदखली - मुख्य मुद्दा: संप्रभुता, स्वायत्तता, वनाधिकार

- समाज: जाति-विभाजित, स्तरीकृत - समाज: समतावादी, बंधुत्व-आधारित (कबीलाई)

- विरोध का लक्ष्य: ज़मींदार व इज़ारेदार - विरोध का लक्ष्य: समूचा 'दिक्कू' तंत्र व विदेशी राज

- हिंसा: प्रायः सीमित (कचहरी/बही-खाते) - हिंसा: पूर्ण व आमने-सामने का युद्ध

1. वैचारिक और सामाजिक संरचना

- **किसानों का आंदोलन:** किसान समाज पारंपरिक रूप से जाति, धर्म और सामाजिक स्तरीकरण में बंटा हुआ था। इसलिए किसान आंदोलनों में वर्गीय चेतना के साथ-साथ कई बार धार्मिक सुधारवादी या जातीय पहचान के तत्व (जैसे फराज़ी या मोपला) जुड़े थे। उनके लक्ष्य प्रायः व्यवस्था के भीतर तात्कालिक राहत (लगान में कमी, बेदखली पर रोक) प्राप्त करने तक सीमित होते थे।
- **आदिवासियों का आंदोलन:** जनजातीय समाज जातिविहीन, समतावादी और रक्त-संबंधों (Kinship) पर आधारित था। उनके लिए जंगल और ज़मीन किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति नहीं, बल्कि उनके पूर्वजों और ईश्वर की सामूहिक धरोहर थी। इसलिए आदिवासी आंदोलन में पूरा कबीला एक साथ युद्ध में उतरता था। उनका संघर्ष केवल आर्थिक रियायत के लिए नहीं, बल्कि अपनी खोई हुई स्वायत्तता और "स्वर्ण युग" (Satyug) की पुनर्स्थापना के लिए था।

2. नेतृत्व का स्वरूप और 'मसीहावाद' (Messianism)

आदिवासी आंदोलनों की एक विशिष्ट विशेषता थी—करिश्माई और मसीहाई नेतृत्व। सिद्धू-कान्हू (संथाल), तिलका मांझी (पहाड़िया), या बाद के दौर में बिरसा मुंडा (मुंडा उलगुलान)—इन सभी नेताओं ने यह दावा किया कि उनके पास कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं है, बल्कि वे ईश्वर (सिंगबोंगा/ठाकुर जी) के संदेशवाहक हैं। इस मसीहाई विश्वास ने आदिवासियों के भीतर से मृत्यु का भय समाप्त कर दिया। उन्हें विश्वास था कि ईश्वर के आशीर्वाद से अंग्रेजों की बंदूक की गोलियां पानी बन जाएंगी।

दूसरी ओर, किसान आंदोलनों में नेतृत्व प्रायः असंतुष्ट ज़मींदारों (जैसे दुर्जन सिंह), स्थानीय धार्मिक संतों (जैसे मजनू शाह, दूदू मियां) या ग्राम प्रधानों के हाथों में था, जो कानूनी और राजनीतिक समझ के साथ रणनीति बनाते थे।

3. युद्ध पद्धति और प्रतिरोध के उपकरण

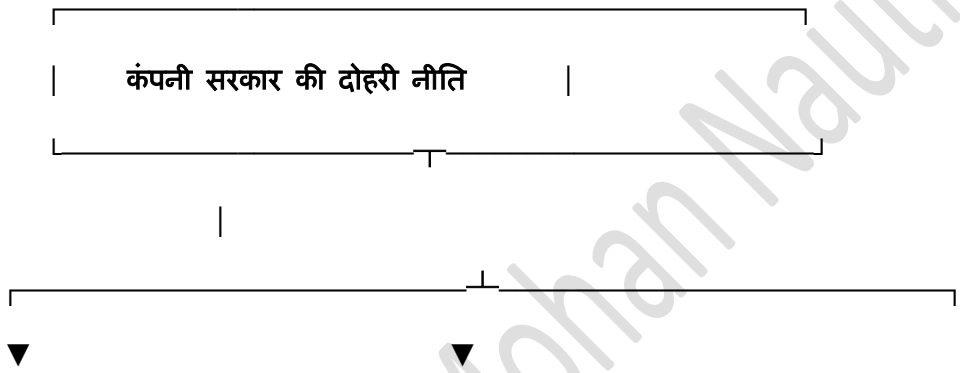
- किसान प्रायः हड़ताल, लगान-बंदी, सामाजिक बहिष्कार, कचहरियों के अभिलेख जलाने और चुनिंदा महाजनों पर हमलों की रणनीति अपनाते थे।

Dr. Rakesh Mohan Nariyal

- आदिवासी विद्रोहियों ने खुले और भीषण सशस्त्र संघर्ष का रास्ता चुना। वे अपनी भौगोलिक परिस्थितियों (घने जंगलों, बीहड़ों और पहाड़ियों) से भली-भांति परिचित थे, इसलिए उन्होंने अंग्रेजों की विशाल सेना के विरुद्ध छापामार (गुरिल्ला) युद्ध का अत्यंत प्रभावी प्रयोग किया। किंतु उनकी सबसे बड़ी त्रासदी यह थी कि 19वीं सदी के मध्य में वे तीर-कमान, भालों और टांगियों से उस ब्रिटिश सेना का मुकाबला कर रहे थे जो औद्योगिक क्रांति के सबसे आधुनिक हथियारों और तोपों से लैस थी।

6. कंपनी सरकार की दमनकारी नीतियां और प्रशासनिक अनुक्रिया

ईस्ट इंडिया कंपनी की इन लोकप्रिय आंदोलनों के प्रति प्रतिक्रिया दो-स्तरीय थी: पहला, क्रूरतम सैन्य दमन; और दूसरा, विवशता में किए गए आंशिक प्रशासनिक समायोजन।



(क) सैन्य दमन और राज्य प्रायोजित आतंक

कंपनी ने किसी भी जन-विद्रोह को कभी 'नागरिक असंतोष' के रूप में नहीं देखा; उसने इसे हमेशा एक 'युद्ध' की तरह लिया।

- सामूहिक दंड: विद्रोह करने वाले गांवों के सभी पुरुषों को गोली मार दी जाती थी, महिलाओं और बच्चों को बेघर कर दिया जाता था और खड़ी फसलों को जलाकर अकाल की स्थिति पैदा कर दी जाती थी।
- सार्वजनिक फांसी: विद्रोहियों के मन में आतंक बिठाने के लिए नेताओं को पकड़कर उनके ही गांवों में बरगद के पेड़ों या चौराहों पर सार्वजनिक रूप से फांसी पर लटकाया जाता था और उनके शवों

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

को हफ्तों तक वहीं लटकने दिया जाता था (जैसा तिलका मांझी और संन्यासी विद्रोहियों के साथ हुआ)।

- मार्शल लॉ: जब नियमित पुलिस विफल हो जाती, तो सेना की गोरखा, सिख या यूरोपीय रेजीमेंटों को बुलाकर पूरे क्षेत्र में असीमित अधिकार दे दिए जाते थे।

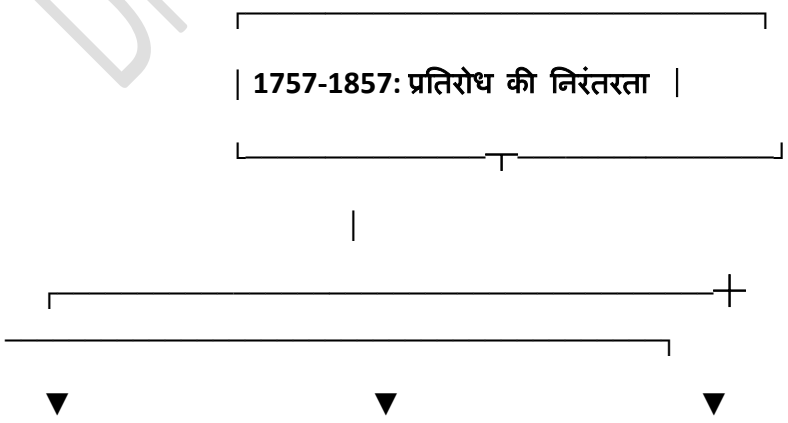
(ख) प्रशासनिक समायोजन और अलगाव की नीति

जब सैन्य दमन से भी आदिवासियों की स्वतंत्रता की ललक नहीं दबी, तो कंपनी ने एक नई कूटनीतिक चाल चली। उसने आदिवासियों को मुख्यधारा के भारतीय समाज से पूरी तरह अलग-थलग (Isolate) करने की नीति अपनाई:

1. नॉन-रेग्युलेशन प्रांत (Non-Regulation Districts): जंगल महल (1805), दक्षिण-पश्चिमी सीमांत एजेंसी (1833) और संथाल परगना (1855) जैसे विशेष प्रशासनिक क्षेत्र बनाए गए। इन क्षेत्रों में कंपनी के सामान्य दीवानी और फौजदारी कानूनों को निलंबित कर दिया गया और सारा नियंत्रण सीधे एक ब्रिटिश कमिश्नर या उपायुक्त (Deputy Commissioner) को सौंप दिया गया।
2. पारंपरिक प्रमुखों का सह-योजन (Co-optation): मानकी, मुंडा, मांझी और पहाड़िया सरदारों को कुछ विशेषाधिकार और पुलिस अधिकार दिए गए ताकि वे अपने ही समाज के भीतर विद्रोहों को दबाने में अंग्रेजों के मुखबिर और दलाल बन सकें।
3. अलगाव की नीति के दूरगामी दुष्प्रभाव: अंग्रेजों की इस तथाकथित 'संरक्षण' की नीति ने वास्तव में आदिवासियों को विकास, आधुनिक शिक्षा और राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से काटकर अलग कर दिया, जिसकी ऐतिहासिक विसंगतियां स्वतंत्र भारत को भी दशकों तक झेलनी पड़ीं।

7. निष्कर्ष: 1857 की महाक्रांति की पृष्ठभूमि और ऐतिहासिक महत्व

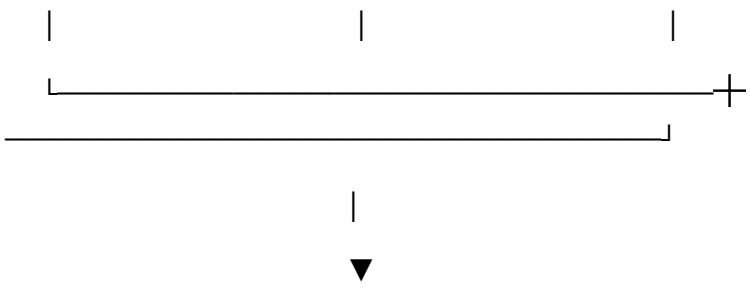
1757 से 1857 के सौ वर्षों का कालखंड केवल ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार का इतिहास नहीं था; यह भारतीय धरती के सबसे उपेक्षित और शोषित बेटों—किसानों और आदिवासियों—के अदम्य साहस, अप्रतिम बलिदान और निरंतर प्रतिरोध की महागाथा थी।



Dr. Rakesh Mohan Nariyal

[संन्यासी, रंगपुर, फराज़ी] [कोल, भील, खोंड] [संथाल हुल (1855)]

(किसानों का लगान-विरोधी संघर्ष) (आदिवासियों की संप्रभुता रक्षा) (कंपनी शासन की जड़ों पर आघात)



[1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम]

सिपाहियों के पीछे खड़ी विद्रोही

किसानी और जनजातीय आबादी की शक्ति

1857 के महासंग्राम की आधारशिला

पारंपरिक इतिहासलेखन में 1857 के विद्रोह को केवल चर्बी वाले कारतूसों और असंतुष्ट सिपाहियों का गदर माना जाता रहा है। किंतु ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि 1857 की सेना की वर्दी पहनने वाला प्रत्येक सिपाही वास्तव में वर्दीधारी किसान ही था। अवध, बिहार और उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के जिन सैनिकों ने 1857 में विद्रोह किया, उनके परिवारों ने पिछले सौ वर्षों से कंपनी की राजस्व नीतियों, अदालती लूट और साहूकारी उत्पीड़न को झेला था। 1855 का संथाल 'हुल' और 1831 का 'कोल विद्रोह' 1857 के ज्वालामुखी के फूटने से ठीक पहले के वे झटके थे, जिन्होंने साबित कर दिया था कि कंपनी राज का नैतिक और राजनीतिक इकबाल पूरी तरह समाप्त हो चुका था।

ऐतिहासिक मूल्यांकन

यद्यपि ये सभी आंदोलन अंततः कंपनी की बेहतर सैन्य शक्ति, आधुनिक हथियारों और कूटनीतिक चालों के कारण पराजित हो गए; यद्यपि उनमें एक अखिल भारतीय दृष्टि और आधुनिक राजनीतिक विकल्प का अभाव था; किंतु उनका ऐतिहासिक महत्व किसी भी दृष्टि से कम नहीं आंका जा सकता:

1. कंपनी के 'प्रबुद्ध शासन' के मिथक का अंत: इन आंदोलनों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के उस पाखंडी दावे की धज्जियां उड़ा दीं कि ब्रिटिश राज भारत के भले के लिए एक "सभ्यकारी मिशन" (Civilizing Mission) था। इसने सिद्ध किया कि कंपनी राज केवल नग्न, बर्बर और हिंसक लूट पर टिका हुआ था।

2. स्थानीय और जनवादी राष्ट्रवाद की नींव: स्वतंत्रता संग्राम केवल आधुनिक विश्वविद्यालयों में पढ़े वकीलों और बुद्धिजीवियों की संभ्रांत बहसों से शुरू नहीं हुआ था; उसका वास्तविक रक्त-बीज तिलका

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

मांझी, बुद्धू भगत, सिद्धू-कान्हू, मजनू शाह और भवानी पाठक जैसे अनगिनत अनाम किसान और आदिवासी योद्धाओं ने अपने खून से बोया था।

3. भविष्य के आंदोलनों की प्रेरणा: 19वीं सदी के इन प्रारंभिक आंदोलनों ने ही आगे चलकर 20वीं सदी के चंपारण सत्याग्रह, खेड़ा आंदोलन, एका आंदोलन, बारदोली सत्याग्रह और बिरसा मुंडा के ऐतिहासिक 'उलगुलान' की वैचारिक और जुझारू ज़मीन तैयार की।

संक्षेप में, कंपनी के शासन का लोकप्रिय विरोध भारत की उस जनवादी आत्मा का जयघोष था, जिसने कभी भी विदेशी दासता को मौन रहकर स्वीकार नहीं किया। जब भारत के राजा, नवाब और संभ्रांत सामंत अंग्रेजों के सामने घुटने टेक रहे थे, उस समय देश के जंगलों, पहाड़ियों और दूरदराज के खेतों में हल चलाने वाले किसान और तीर-कमान थामे आदिवासी अपनी जान की बाज़ी लगाकर भारत की स्वतंत्रता और स्वाभिमान की मशाल को प्रज्वलित रखे हुए थे।

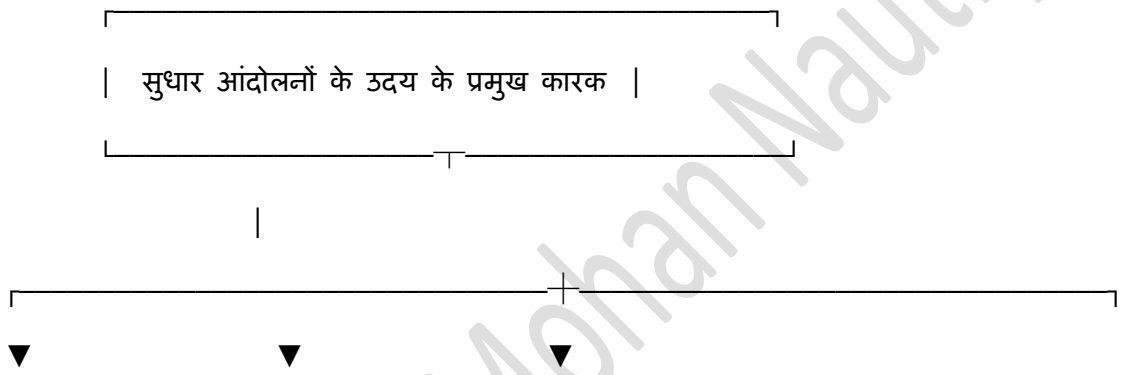
Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

उन्नीसवीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण: सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत एक ऐतिहासिक चौराहे पर खड़ा था। एक ओर मुग़ल सत्ता के विघटन के बाद औपनिवेशिक दासता की बेड़ियां कसती जा रही थीं, तो दूसरी ओर सदियों से चली आ रही सामाजिक-धार्मिक जड़ता ने समाज को पंगु बना दिया था। इसी अंधकारमय युग में तर्क, मानवतावाद और अंतरावलोकन की एक ऐसी चेतना जाग्रत हुई, जिसे आधुनिक इतिहास में **'भारतीय पुनर्जागरण' (Indian Renaissance)** के नाम से जाना जाता है।

1. सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों के उदय के प्रमुख कारण

यह सुधार आंदोलन किसी एकांगी घटना का परिणाम नहीं थे, बल्कि इनके पीछे कई आंतरिक और बाह्य कारक सक्रिय थे:



1. **धार्मिक विकृतियां और पुरोहिती शोषण:** हिंदू धर्म का मूल दर्शन उपनिषदों के अद्वैतवाद और उदारता से भटककर बाह्य आडंबरों, अंधविश्वासों, बलि प्रथा और अर्थहीन कर्मकांडों में सिमट गया था। पुरोहित वर्ग ने धर्म की मनमानी व्याख्या कर आम जनता पर मानसिक नियंत्रण स्थापित कर रखा था।
2. **महिलाओं की दयनीय और नारकीय स्थिति:** तत्कालीन समाज में महिलाओं को व्यक्तिगत पहचान से वंचित रखा गया था। बाल विवाह, कुलीन बहुविवाह (Kulin Polygamy), पर्दा प्रथा, अशिक्षा और संपत्ति अधिकारों से पूर्ण वंचना सामान्य बात थी। पति की मृत्यु के बाद जीवित स्त्री को चिता पर जला देने वाली **'सती प्रथा'** समाज के नैतिक पतन का निकृष्टतम उदाहरण थी।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

3. **जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता:** जन्म आधारित कठोर जाति व्यवस्था ने समाज को हज़ारों टुकड़ों में विभाजित कर दिया था। शूद्रों और अछूत माने जाने वाले वर्गों को बुनियादी मानवाधिकारों, शिक्षा और सार्वजनिक स्थलों के उपयोग से वंचित रखा गया था।

4. **पाश्चात्य शिक्षा और यूरोपीय प्रबोधन (Enlightenment):** अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार ने भारतीयों के एक वर्ग को आधुनिक यूरोपीय विचारों—स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कवाद—से परिचित कराया। वोल्टेयर, रूसो और थॉमस पेन के विचारों ने युवाओं को अपनी ही परंपराओं का निष्पक्ष परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया।

5. **ईसाई मिशनरियों का प्रभाव और औपनिवेशिक चुनौती:** ईसाई मिशनरियों ने हिंदू धर्म की सामाजिक बुराइयों (जैसे सती, जातिवाद, मूर्तिपूजा) को आधार बनाकर भारतीय संस्कृति को हीन और बर्बर प्रमाणित करना शुरू किया। इस आक्रामक सांस्कृतिक चुनौती ने भारतीय प्रबुद्ध वर्ग को यह सोचने पर विवश किया कि यदि अपनी संस्कृति की रक्षा करनी है, तो उसकी आंतरिक बुराइयों को उखाड़ फेंकना ही होगा।

2. राजा राम मोहन राय: आधुनिक भारत के अग्रदूत एवं ब्रह्म समाज

राजा राम मोहन राय (1772–1833) को 'भारतीय पुनर्जागरण का जनक', 'आधुनिक भारत का निर्माता' और 'नवीन भारत का तारा' कहा जाता है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के श्रेष्ठ विचारों का समन्वय कर भारतीय समाज में सुधारों की आधारशिला रखी।

दार्शनिक आधार और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन

राम मोहन राय बहुभाषाविद थे; वे संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी, ग्रीक, हिब्रू और लैटिन के प्रकांड ज्ञाता थे। उन्होंने विभिन्न धर्मग्रंथों का उनके मूल रूप में अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि सभी धर्मों का मूल सार एक ही है: **एकेश्वरवाद (Monotheism)**।

- **तुहफ़त-उल-मुवाहिद्दीन (1803):** फ़ारसी में लिखी गई इस पुस्तक ('एकेश्वरवादियों को उपहार') में उन्होंने मूर्तिपूजा और अंधविश्वासों का तार्किक खंडन किया।
- **आत्मीय सभा (1815):** कलकत्ता में समान विचारधारा वाले मित्रों के साथ मिलकर उन्होंने धार्मिक वाद-विवाद और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध विमर्श हेतु 'आत्मीय सभा' की स्थापना की।
- **वेदांत का पुनर्पाठ:** उन्होंने सिद्ध किया कि उपनिषद और वेदांत किसी भी प्रकार की मूर्तिपूजा या बहुदेववाद का समर्थन नहीं करते, बल्कि वे केवल एक निर्गुण, निराकार परब्रह्म की उपासना का संदेश देते हैं।

सती प्रथा के विरुद्ध ऐतिहासिक संघर्ष

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

राजा राम मोहन राय के जीवन का सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब 1811 में उनके बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु के बाद उनकी भाभी अलकमंजरी को परिजनों द्वारा जबरन सती होने के लिए विवश किया गया। इस हृदयविदारक घटना ने उन्हें झकझोर कर रख दिया और उन्होंने सती प्रथा के उन्मूलन को अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

उन्होंने सती प्रथा के समर्थकों से तीखा शास्त्रार्थ किया। उन्होंने 'ऋग्वेद' और 'मनुस्मृति' के प्रमाणों से यह साबित किया कि हिंदू धर्मग्रंथों में कहीं भी सती होने की अनिवार्यता नहीं बताई गई है; यह केवल विधवा की संपत्ति हड़पने के लिए रची गई एक निर्मम सामाजिक साजिश है। उन्होंने कलकत्ता के श्मशानों में जाकर पहरे दिए ताकि किसी महिला को जबरन न जलाया जाए।

उनके अनवरत प्रयासों का ही परिणाम था कि भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने **4 दिसंबर 1829 को बंगाल सती विनियमन (Regulation XVII)** पारित कर सती प्रथा को गैर-कानूनी और हत्या के समतुल्य दंडनीय अपराध घोषित किया।

ब्रह्म समाज की स्थापना (1828)

20 अगस्त 1828 को उन्होंने 'ब्रह्म सभा' की स्थापना की, जो बाद में **'ब्रह्म समाज'** कहलाई।

- **ट्रस्ट डीड के सिद्धांत:** ब्रह्म समाज के मंदिर में किसी भी प्रकार की मूर्ति, चित्र, बलि या कर्मकांड की अनुमति नहीं थी। यहां सभी धर्मों के लोग बिना किसी भेदभाव के केवल निराकार ईश्वर की प्रार्थना और नैतिक उपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते थे।
- **उद्देश्य:** हिंदू धर्म को विकृतियों से मुक्त करना और बौद्धिक चिंतन के आधार पर एक सार्वभौमिक, सहिष्णु समाज का निर्माण करना।

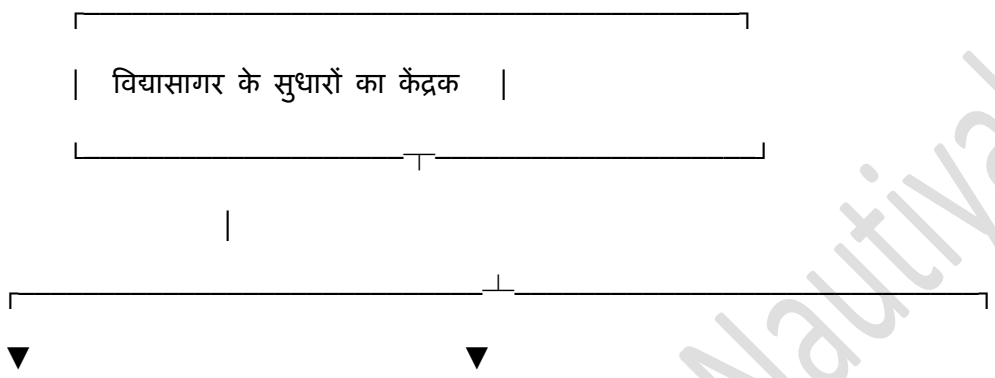
शिक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता और अंतरराष्ट्रीय दृष्टि

- **शिक्षा:** वे मानते थे कि भारत का उद्धार केवल पारंपरिक संस्कृत शिक्षा से नहीं हो सकता। उन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा और अंग्रेज़ी का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने 1817 में डेविड हेयर के साथ मिलकर **'हिंदू कॉलेज'** की स्थापना में सहयोग दिया और 1825 में **'वेदांत कॉलेज'** स्थापित किया जहां भारतीय दर्शन और पाश्चात्य भौतिक विज्ञान दोनों पढ़ाए जाते थे।
- **प्रेस की स्वतंत्रता:** वे भारत में राष्ट्रीय पत्रकारिता के जनक थे। उन्होंने बंगाली में *'संवाद कौमुदी'* (1821) और फ़ारसी में *'मिरात-उल-अखबार'* (1822) का संपादन किया। जब 1823 में जॉन एडम्स ने प्रेस पर प्रतिबंध लगाया, तो उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पुरजोर वकालत की।
- **मुग़ल बादशाह द्वारा 'राजा' की उपाधि:** मुग़ल बादशाह अकबर द्वितीय ने अपनी पेंशन बढ़वाने के लिए उन्हें ब्रिटिश सम्राट विलियम चतुर्थ के दरबार में लंदन भेजा और उन्हें 'राजा' की उपाधि प्रदान की। 1833 में ब्रिस्टल (इंग्लैंड) में उनका देहांत हो गया।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

3. ईश्वर चंद्र विद्यासागर: विधवा पुनर्विवाह और स्त्री शिक्षा के महानायक

बंगाल के मेदिनीपुर ज़िले के एक अत्यंत निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्मे ईश्वर चंद्र बंद्योपाध्याय (1820–1891) को संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता द्वारा उनकी असाधारण विद्वता के लिए **'विद्यासागर' (विद्या का महासागर)** की उपाधि दी गई थी। वे कोरे सिद्धांतवादी नहीं, बल्कि धरातल पर काम करने वाले एक कर्मयोगी और दृढ़ मानवतावादी थे।



[विधवा पुनर्विवाह आंदोलन]

- शास्त्रों (पराशर स्मृति) से प्रमाण
- जनमत संग्रह व हस्ताक्षर अभियान
- 1856 का ऐतिहासिक कानून

[स्त्री शिक्षा एवं सामाजिक समता]

- 35 से अधिक बालिका विद्यालयों की स्थापना
- बेथ्यून स्कूल के अवैतनिक सचिव
- संस्कृत कॉलेज के द्वार गैर-ब्राह्मणों हेतु खोले

विधवा पुनर्विवाह के लिए भगीरथ प्रयास

तत्कालीन हिंदू समाज में, विशेष रूप से बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों में, वृद्ध पुरुषों का 5 से 10 वर्ष की बालिकाओं से विवाह करना आम बात थी। परिणामस्वरूप, हज़ारों बालिकाएं किशोरावस्था तक पहुंचते-पहुंचते विधवा हो जाती थीं। इन बाल-विधवाओं का जीवन नर्क समान था—सफेद धोती, सिर मुंडवाना, फर्श पर सोना, दिन में केवल एक बार बिना नमक का भोजन और परिवार में अपशकुन माना जाना।

विद्यासागर ने इन निरीह बालिकाओं की पीड़ा को अपनी अंतरात्मा से महसूस किया। उन्होंने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया और 1853 में **'पराशर स्मृति'** का एक श्लोक खोज निकाला:

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥"

(पति के लापता होने, मृत्यु होने, संन्यासी होने, नपुंसक होने या पतित होने—इन पांच विपत्तियों में स्त्री को दूसरा पति करने का विधान है।)

उन्होंने कट्टरपंथियों के भीषण विरोध और जानलेवा हमलों की परवाह किए बिना 1,000 से अधिक नागरिकों के हस्ताक्षरों के साथ ब्रिटिश सरकार को एक याचिका सौंपी। उनके अटूट संकल्प के कारण लॉर्ड डलहौज़ी

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

के कार्यकाल में प्रारूपित और लॉर्ड कैनिंग द्वारा **26 जुलाई 1856 को 'हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' (Hindu Widows' Remarriage Act, Act XV of 1856)** पारित किया गया।

इस कानून को वैधानिकता दिलाने के बाद उन्होंने इसे व्यवहार में उतारने के लिए स्वयं अपनी जेब से धन खर्च कर 7 दिसंबर 1856 को कलकत्ता में श्रीश चंद्र विद्यारत्न के साथ पहला कानूनी विधवा पुनर्विवाह संपन्न कराया। उन्होंने अपने इकलौते पुत्र नारायण चंद्र का विवाह भी एक विधवा से कराकर समाज के सामने त्याग का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया।

स्त्री शिक्षा का विस्तार

विद्यासागर का स्पष्ट मानना था कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी, तब तक किसी भी समाज की प्रगति संभव नहीं है।

- 1849 में जॉन एलियट ड्रिंकवाटर बेथ्यून द्वारा स्थापित **'बेथ्यून स्कूल'** (भारत में बालिकाओं का पहला औपचारिक विद्यालय) के वे अवैतनिक सचिव बने।
- विशेष विद्यालय निरीक्षक (Special Inspector of Schools) के रूप में उन्होंने अपने निजी व्यय और प्रयासों से बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में **35 से अधिक बालिका विद्यालयों** की स्थापना की।
- उन्होंने अभिभावकों को अपनी पुत्रियों को स्कूल भेजने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रेरित किया और कन्या शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेख लिखे।

संस्कृत शिक्षा और सामाजिक न्याय

1851 में कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज के प्रधानाचार्य बनने पर उन्होंने दो युगांतकारी निर्णय लिए:

1. उन्होंने संस्कृत कॉलेज के द्वार, जो केवल ब्राह्मणों और वैद्यों के लिए आरक्षित थे, **सभी जातियों (विशेषकर गैर-ब्राह्मण और कायस्थ) के छात्रों के लिए खोल दिए**। यह जातिगत एकाधिकार पर एक बड़ा प्रहार था।
2. उन्होंने संस्कृत व्याकरण की शिक्षा को सरल बनाने के लिए बंगाली में *'वर्ण परिचय'* और *'उपक्रमणिका'* जैसी अमर पाठ्यपुस्तकों की रचना की, जो आज भी बंगाली वर्णमाला की नींव मानी जाती हैं।

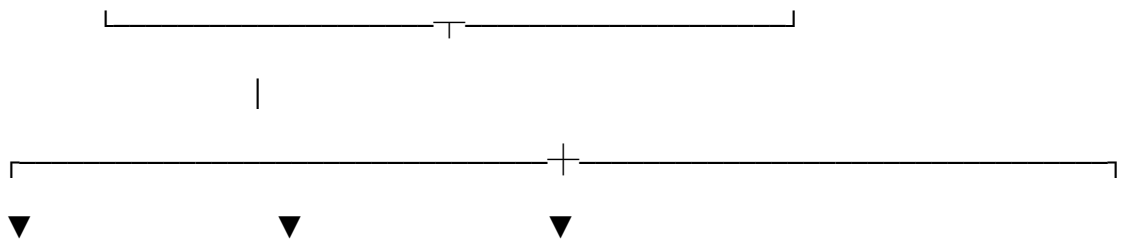
4. गुलामी (दास प्रथा) उन्मूलन आंदोलन

भारत में दास प्रथा का स्वरूप अमेरिकी या अफ्रीकी 'ट्रांस-अटलांटिक स्लेवरी' जैसा केवल बागान-आधारित और औद्योगिक नहीं था, बल्कि यह घरेलू दासता (Domestic Slavery), कृषि दासता और बंधुआ मज़दूरी (Bonded Labour) के रूप में गहराई तक समाया हुआ था।

┌──────────────────────────────────────┐

| गुलामी उन्मूलन: औपनिवेशिक प्रक्रिया |

Dr Rakesh Mohan Nautiyal



[ब्रिटिश चार्टर एक्ट 1833] [भारतीय दासता अधिनियम 1843] [भारतीय दंड संहिता (IPC) 1860]

धारा 88: कंपनी को दास प्रथा समाप्त करने का निर्देश (Act V of 1843): दासों को स्वतंत्र नागरिक का दर्जा धारा 370 व 371: दासों का क्रय-विक्रय संज्ञेय अपराध घोषित

भारत में दासता का पारंपरिक स्वरूप

- **कमिया, हरवाही और गोता प्रथा:** उत्तर भारत (बिहार, ओडिशा) और दक्कन में निम्न जातियों और आदिवासियों को मामूली ऋण के बदले पीढ़ियों तक ज़मींदारों के खेतों पर बंधुआ मज़दूर बनाकर रखा जाता था।
- **घरेलू दास (बांधा/चेरुमर):** मालाबार, बंगाल और मद्रास प्रेसीडेंसी में युद्धबंदियों, अकाल के समय बेचे गए बच्चों और अछूत जातियों के लोगों को संपन्न परिवारों द्वारा खरीदा और बेचा जाता था। अकाल के दिनों में माता-पिता पेट की आग बुझाने के लिए अपने बच्चों को मुट्ठी भर अनाज के बदले बेच देते थे।

उन्मूलन की वैधानिक यात्रा

ब्रिटेन में 1833 में विलियम विल्बरफोर्स और मानवाधिकारवादियों के दबाव में 'स्लेवरी एबोलिशन एक्ट' पारित हो चुका था। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा:

1. **चार्टर एक्ट 1833 की धारा 88:** ब्रिटिश संसद ने ईस्ट इंडिया कंपनी को स्पष्ट निर्देश दिया कि वह भारत में विद्यमान दास प्रथा को समाप्त करने के लिए त्वरित और ठोस प्रशासनिक कदम उठाए।
2. **भारतीय दासता अधिनियम, 1843 (Act V of 1843):**

लॉर्ड एलनबरो के कार्यकाल में यह ऐतिहासिक कानून पारित किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं थीं:

- किसी भी व्यक्ति को कानूनी तौर पर किसी अन्य व्यक्ति का 'दास' नहीं माना जाएगा।
- किसी भी न्यायालय द्वारा दासता के आधार पर किसी भी संपत्ति या श्रम के दावे को स्वीकार नहीं किया जाएगा।
- किसी पूर्व-दास द्वारा अर्जित संपत्ति पर उसके पूर्व स्वामी का कोई कानूनी अधिकार नहीं होगा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- यदि किसी तथाकथित दास पर कोई अत्याचार किया जाता है, तो कानूनन उसे एक स्वतंत्र नागरिक के विरुद्ध किया गया अपराध माना जाएगा।

3. **भारतीय दंड संहिता (IPC, 1860):**

1860 में लागू आईपीसी की धारा 370 और 371 के तहत किसी भी मनुष्य का क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात या उसे दास के रूप में रखना एक गैर-जमानती और कठोर दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया।

यद्यपि कानूनों के बनने से प्रत्यक्ष दास व्यापार पर रोक लग गई, किंतु आर्थिक विपन्नता के कारण बंधुआ मज़दूरी का परोक्ष रूप भारत के कई ग्रामीण अंचलों में स्वतंत्रता के बाद तक जीवित रहा, जिसे अंततः 1976 के 'बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम' द्वारा समाप्त करने का प्रयास किया गया।

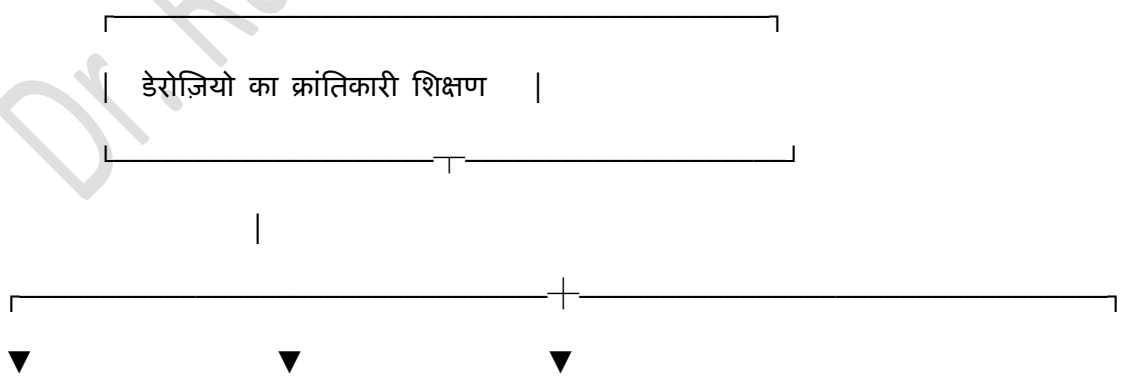
5. यंग बंगाल (यंग इंडिया) आंदोलन: हेनरी विवियन डेरोज़ियो और बौद्धिक उग्रवाद

1820 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1830 के दशक के आरंभ में बंगाल के शिक्षित युवाओं के बीच एक अत्यंत क्रांतिकारी, विद्रोही और बौद्धिक लहर उठी, जिसे **'यंग बंगाल आंदोलन'** (प्रायः इतिहास में इसे प्रारंभिक युवा चेतना के संदर्भ में यंग इंडिया प्रवृत्ति भी कहा जाता है) के नाम से जाना जाता है।

हेनरी विवियन डेरोज़ियो: प्रेरणापुंज

इस आंदोलन के प्रवर्तक **हेनरी लुई विवियन डेरोज़ियो (1809–1831)** थे। वे एक एंग्लो-इंडियन शिक्षक और प्रतिभाशाली कवि थे। मात्र 17 वर्ष की आयु में 1826 में वे हिंदू कॉलेज, कलकत्ता में अंग्रेज़ी साहित्य और इतिहास के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

डेरोज़ियो फ्रांसीसी क्रांति (1789) के आदर्शों—स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व—और अंग्रेज़ दार्शनिक टॉम पेन की पुस्तक '*राइट्स ऑफ मैन*' (Rights of Man) से अत्यधिक प्रभावित थे। अपने चुंबकत्व और असाधारण शिक्षण शैली के कारण वे कॉलेज के प्रतिभाशाली छात्रों (जैसे कृष्णमोहन बनर्जी, दक्षिणारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष, प्यारेचंद मित्रा) के आदर्श बन गए।



Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

प्रेस की स्वतंत्रता पर चर्चा वैज्ञानिक व सामाजिक विमर्श तर्क की कसौटी पर हर बात परखना

आंदोलन का स्वरूप और वैचारिक उग्रवाद

डेरोज़ियो ने अपने छात्रों को सिखाया कि:

- किसी भी परंपरा, ग्रंथ या सत्ता को केवल इसलिए स्वीकार मत करो क्योंकि वह प्राचीन है; हर मान्यता को **तर्क (Reason) की कसौटी** पर परखो।
- मूर्तिपूजा, जात-पात, छुआछूत और महिलाओं के उत्पीड़न के विरुद्ध खुलकर आवाज़ उठाओ।
- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की आज़ादी और महिलाओं की शिक्षा के लिए संघर्ष करो।

डेरोज़ियो के शिष्यों ने, जिन्हें **'डेरोज़ियंस'** कहा जाता था, तत्कालीन हिंदू रूढ़िवादिता पर सीधा सांस्कृतिक प्रहार किया। उन्होंने यज्ञोपवीत (जनेऊ) उतार फेंके, गोमांस खाकर और मदिरापान कर सार्वजनिक रूप से रूढ़िवादी प्रतिबंधों को तोड़ा। इस वैचारिक आक्रामकता से कलकत्ता का रूढ़िवादी हिंदू समाज भयभीत हो गया।

रूढ़िवादियों के दबाव में हिंदू कॉलेज प्रबंधन ने 1831 में डेरोज़ियो को कॉलेज से निष्कासित कर दिया। उसी वर्ष मात्र 22 वर्ष की अल्पायु में हैजा (Cholera) से इस महान पथप्रदर्शक की असमय मृत्यु हो गई।

मूल्यांकन और सीमाएं

यंग बंगाल आंदोलन की सीमा यह थी कि यह अपने समय से बहुत आगे था। इसका आधार कलकत्ता के कुछ संभ्रांत अंग्रेज़ी-शिक्षित युवाओं तक सीमित रहा; यह गांवों के आम किसानों और जनसाधारण से नहीं जुड़ सका। उनका व्यवहार कई बार केवल सतही पाश्चात्य नकल और अति-उग्रवाद प्रतीत हुआ।

इसके बावजूद, भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में इस आंदोलन का योगदान अविस्मरणीय है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने डेरोज़ियंस को **"बंगाल में आधुनिक सभ्यता के अग्रदूत और हमारी भावी राष्ट्रीय चेतना के बीज बोने वाले"** के रूप में याद किया। उन्होंने ही आगे चलकर सामाजिक संस्थाओं, समाचार पत्रों और राजनीतिक सभाओं के माध्यम से भारत में आधुनिक राजनीति की नींव रखी।

6. आंदोलनों का तुलनात्मक सार-संक्षेप

सुधारक / आंदोलन	मुख्य केंद्र	कार्य का प्राथमिक क्षेत्र	प्रमुख वैधानिक / संस्थागत उपलब्धि
राजा राम मोहन राय	बंगाल (कलकत्ता)	सती प्रथा उन्मूलन, एकेश्वरवाद, आधुनिक शिक्षा, प्रेस स्वतंत्रता	**ब्रह्म समाज (1828)**; लॉर्ड बेंटिंक द्वारा **सती निषेध अधिनियम (1829)** पारित।
ईश्वर चंद्र विद्यासागर	बंगाल	विधवा पुनर्विवाह, बालिका शिक्षा, संस्कृत का लोकतंत्रीकरण	**हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856)**; बेथ्यून स्कूल व 35+ बालिका विद्यालयों की स्थापना।

Dr. Rakesh Mohan Nativyal

गुलामी उन्मूलन	अखिल भारतीय	बंधुआ मज़दूरी, मानव तस्करी और घरेलू दासता की समाप्ति	**चार्टर एक्ट 1833**; **भारतीय दासता अधिनियम (Act V of 1843)**; आईपीसी 1860।
यंग बंगाल (डेरोज़ियो)	कलकत्ता (हिंदू कॉलेज)	बौद्धिक स्वतंत्रता, तर्कवाद, रूढ़िवाद का समूल खंडन	**एकेडेमिक एसोसिएशन (1828)**; युवाओं में आधुनिक राजनीतिक व सामाजिक चेतना का बीजारोपण।

7. समग्र मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

उन्नीसवीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन केवल धार्मिक कर्मकांडों के विरुद्ध बगावत नहीं थे, बल्कि वे एक सोए हुए, पराधीन और विभाजित राष्ट्र की **आत्मिक मुक्ति का महासंग्राम** थे।

इन आंदोलनों ने सदियों से उपेक्षित नारी को समाज के केंद्र में लाकर खड़ा किया। राजा राम मोहन राय ने जहां उसे चिता की अग्नि से बचाया, वहीं ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने उसे विधवा के नारकीय जीवन से मुक्त कर शिक्षा की रोशनी दी। गुलामी उन्मूलन ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर वैधानिक प्रहार किया, और डेरोज़ियो के युवा आंदोलन ने भारतीय मेधा को बिना भय के प्रश्न पूछने और तार्किक बनने का साहस दिया।

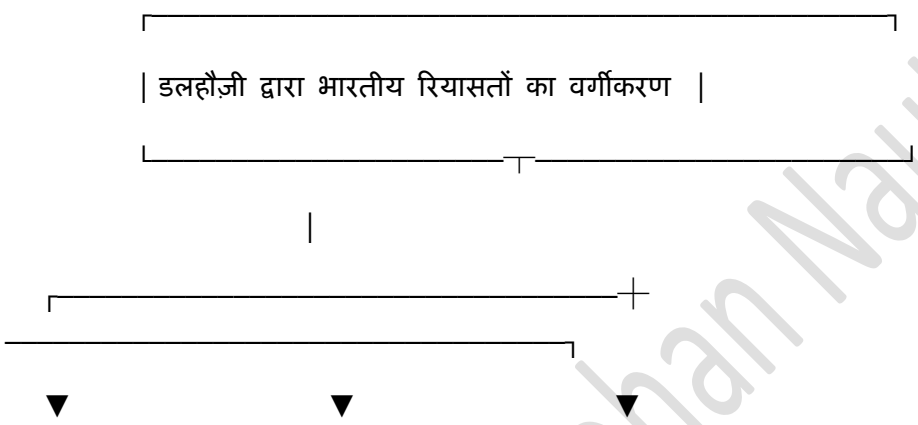
यद्यपि इन आंदोलनों की अपनी सीमाएं थीं—ये मुख्य रूप से शहरी उच्च और मध्यम वर्गों तक अधिक सक्रिय रहे और आंतरिक भारत के करोड़ों अछूतों व किसानों के जीवन को तुरंत नहीं बदल सके—किंतु इन्होंने ही वह वैचारिक और नैतिक आधार तैयार किया जिस पर आगे चलकर बीसवीं सदी का **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम** और **संविधान सभा का मानवीय ढांचा** निर्मित हुआ। यदि 19वीं सदी का यह पुनर्जागरण न हुआ होता, तो 20वीं सदी में महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में समतामूलक, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत का निर्माण संभव नहीं हो पाता।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1857 का ऐतिहासिक महासंग्राम: कारण, प्रमुख घटनाएं एवं दूरगामी परिणाम

1. साम्राज्यवादी मंसूबों में वृद्धि: लॉर्ड डलहौज़ी और व्यपगत का सिद्धांत (Doctrine of Lapse)

1848 में जब लॉर्ड डलहौज़ी भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया, तो ब्रिटिश विस्तारवाद अपने सबसे आक्रामक चरण में प्रविष्ट हुआ। पूर्ववर्ती गवर्नर-जनरलों (जैसे लॉर्ड वेलेजली) ने 'सहायक संधि' (Subsidiary Alliance) के माध्यम से भारतीय रियासतों की संप्रभुता छीनकर उन्हें अप्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा था, किंतु डलहौज़ी का स्पष्ट मत था कि देशी रियासतें शासन की दृष्टि से अकर्मण्य हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्यक्ष विस्तार के मार्ग में बाधा हैं।



व्यपगत के सिद्धांत का स्वरूप एवं क्रियान्वयन

हिंदू विधि और पारंपरिक मर्यादाओं के अनुसार, यदि किसी शासक की अपनी कोई स्वाभाविक संतान नहीं होती थी, तो उसे अपने निकट संबंधी के बालक को गोद (दत्तक पुत्र) लेने का पूर्ण धार्मिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त था। डलहौज़ी ने इस पारंपरिक अधिकार को विकृत करते हुए यह नियम बनाया कि:

- किसी भी देशी नरेश का दत्तक पुत्र उसकी **निजी संपत्ति** का उत्तराधिकारी तो हो सकता है, किंतु वह **राजनीतिक सत्ता या गद्दी (राज्य)** का उत्तराधिकारी तब तक नहीं बन सकता जब तक कि ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता (कंपनी) ने इसकी पूर्व स्वीकृति न दी हो।
- कंपनी किसी भी ऐसी प्रार्थना को अस्वीकार करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र थी।

इस सिद्धांत के तहत हड़पे गए प्रमुख राज्य

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1. **सतारा (1848):** छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज अप्पा साहिब के निधन के बाद सबसे पहले सतारा का विलय किया गया।

2. **जैतपुर और संबलपुर (1849):** बुंदेलखंड के जैतपुर और ओडिशा के संबलपुर के शासकों के निःसंतान मरने पर उन्हें साम्राज्य में मिलाया गया।

3. **बघाट (1850) एवं उदयपुर (1852):** हिमाचल और मध्य भारत की इन रियासतों को हड़पा गया (यद्यपि बाद में लॉर्ड कैनिंग ने इन्हें पुनः बहाल किया)।

4. **झांसी (1853):** राजा गंगाधर राव की मृत्यु के उपरांत महारानी लक्ष्मीबाई के दत्तक पुत्र **दामोदर राव** को उत्तराधिकारी मानने से इंकार कर दिया गया और झांसी पर ब्रिटिश ध्वज फहरा दिया गया।

5. **नागपुर (1854):** भोंसले शासक राघोजी तृतीय के देहांत के बाद न केवल नागपुर का विलय हुआ, बल्कि राजमहल की साख, आभूषण, हाथी और घोड़ों तक की खुली नीलामी कलकत्ता के बाज़ार में की गई, जिससे भारतीय संभ्रांत वर्ग में गहरा रोष फैल गया।

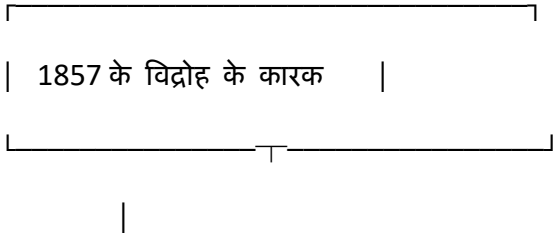
अवध का विलय (1856): कुशासन का आरोप

अवध पर व्यपगत का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता था क्योंकि नवाब वाजिद अली शाह के कई स्वाभाविक उत्तराधिकारी थे और अवध 1764 के बक्सर युद्ध के बाद से ही अंग्रेजों का सबसे निष्ठावान मित्र रहा था। अतः डलहौज़ी ने जेम्स आउट्रम की एक मनगढ़ंत रिपोर्ट के आधार पर नवाब पर **'कुशासन और अकर्मण्यता' (Misgovernance)** का आरोप लगाया और 1856 में अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

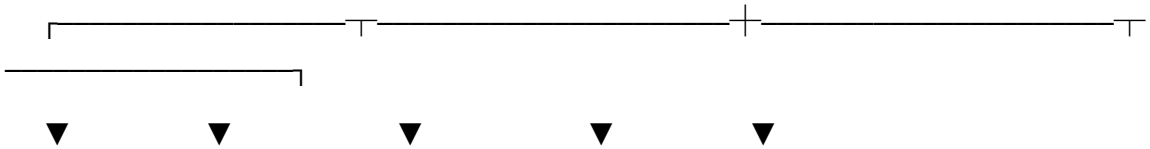
इस कदम ने भारतीय सिपाहियों की निष्ठा पर अंतिम प्रहार किया, क्योंकि बंगाल की ब्रिटिश सेना में लगभग 75,000 सिपाही अकेले अवध के कृषक परिवारों से आते थे। अवध को उस समय **'बंगाल सेना की पौधशाला' (Nursery of the Bengal Army)** कहा जाता था। अपने नवाब के अपमान और अवध में नई भू-राजस्व नीतियों के थोपे जाने से इन सिपाहियों में बदले की आग धधक उठी।

2. 1857 के विद्रोह के बहुआयामी कारण

1857 की क्रांति किसी एक तात्कालिक घटना की उपज नहीं थी; यह विगत सौ वर्षों (1757–1857) के औपनिवेशिक दमन, आर्थिक लूट, सांस्कृतिक अपमान और नस्लीय भेदभाव से उपजे व्यापक असंतोष का हिंसक विस्फोट था।



Dr. Rakesh Mohan Nautiyal



[राजनीतिक कारण] [आर्थिक कारण] [सामाजिक-धार्मिक] [सैन्य कारण] [तात्कालिक कारण]

- व्यपगत का सिद्धांत - दस्तकारी का नाश - सती-विधवा कानून - नस्लीय भेदभाव - चर्बी वाले कारतूस

- अवध का विलय - अत्यधिक लगान - मिशनरियों की छूट - सामान्य सेवा भर्ती (एनफील्ड राइफल)

- पेंशन/उपाधि समाप्ति- किसानों की बेदखली - धार्मिक अयोग्यता अधि. - भत्ते में कटौती - धर्म भ्रष्ट का भय

(क) राजनीतिक कारण

- **सामंतों और शासकों में असुरक्षा:** डलहौज़ी के आक्रामक विलयों ने भारत के समस्त राजाओं और नवाबों के मन में यह भय भर दिया कि कंपनी की गिद्ध-दृष्टि कभी भी उनके राज्य को लील सकती है।
- **मुग़ल सम्राट का अपमान:** लॉर्ड डलहौज़ी और लॉर्ड कैनिंग ने घोषणा की कि बहादुर शाह ज़फ़र की मृत्यु के बाद मुग़ल शहज़ादों को सम्राट की उपाधि छोड़नी होगी, लाल किला खाली कर कुतुब मीनार के पास एक सामान्य हवेली में रहना होगा, और सिक्कों पर से मुग़ल बादशाह का नाम हटा दिया जाएगा। यह निर्णय उत्तर भारत के मुसलमानों के लिए असह्य आघात था।
- **पेंशन और उपाधियों की समाप्ति:** पेशवा बाजीराव द्वितीय के देहांत के बाद उनके दत्तक पुत्र **नाना साहेब (धोंधू पंत)** की ₹8 लाख की वार्षिक पेंशन बंद कर दी गई। कर्नाटक के नवाब और तंजौर के राजा की पारिवारिक उपाधियां छीन ली गईं।

(ख) आर्थिक कारण

- **पारंपरिक कृषि और दस्तकारी का विनाश:** ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्थाओं (स्थायी, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी) ने किसानों को साहूकारों और महाजनों के चंगुल में फंसाकर भूमिहीन बना दिया। ब्रिटिश मशीनों से बने सस्ते कपड़ों ने भारत के विश्वप्रसिद्ध हथकरघा उद्योग को समूल नष्ट कर दिया।
- **इनाम आयोग (Inam Commission, 1852):** बॉम्बे प्रेसीडेंसी में गठित इस आयोग ने ज़मींदारों की जागीरों और लगान-मुक्त ज़मीनों (इनाम) के स्वामित्व के कागजातों की जांच की। उचित दस्तावेज़ न होने के बहाने लगभग 20,000 जागीरें ज़ब्त कर ली गईं। इस कदम ने पारंपरिक भू-स्वामी अभिजात वर्ग को अंग्रेजों का घोर शत्रु बना दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

(ग) सामाजिक एवं धार्मिक कारण

- **सांस्कृतिक आक्रमण की आशंका:** 1813 के चार्टर एक्ट के तहत ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की खुली छूट दी गई। वे जेलों, अस्पतालों, बाज़ारों और स्कूलों में जाकर हिंदू और मुस्लिम धर्मग्रंथों का उपहास उड़ाते थे और खुलेआम धर्म-परिवर्तन कराते थे।
- **सुधार कानूनों का रूढ़िवादी विरोध:** यद्यपि सती प्रथा निषेध (1829) और हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) प्रगतिशील कदम थे, किंतु अशिक्षित और पारंपरिक समाज ने इन्हें अपनी धार्मिक स्वायत्तता और सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करने का विदेशी षड्यंत्र माना।
- **धार्मिक अयोग्यता अधिनियम, 1850 (Lex Loci Act):** इस कानून के अनुसार, यदि कोई हिंदू अपना धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन जाता था, तब भी उसे उसकी पैतृक संपत्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था। जनता को लगा कि यह कानून हिंदू धर्म को नष्ट कर ईसाई धर्म को बढ़ावा देने के लिए बनाया गया है।

(घ) सैन्य कारण (सिपाहियों का आंतरिक असंतोष)

- **नस्लीय भेदभाव और हीनता की भावना:** भारतीय सिपाही कंपनी की सेना की रीढ़ थे (लगभग 87% सेना भारतीय थी), फिर भी उनके साथ नस्लीय गाली-गलौज की जाती थी। एक भारतीय सिपाही कितनी भी निष्ठा से कार्य करे, वह सूबेदार के पद से ऊपर पदोन्नत नहीं हो सकता था।
- **वेतन और भत्तों में भारी विषमता:** एक ही पद पर काम करने वाले यूरोपीय सैनिक को भारतीय सैनिक की तुलना में तीन गुना अधिक वेतन और बेहतर राशन मिलता था। सिंध और पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाए जाने के बाद वहां तैनात भारतीय सैनिकों का **'विदेशी सेवा भत्ता' (Bhatta)** समाप्त कर दिया गया।
- **सामान्य सेवा भर्ती अधिनियम, 1856 (General Service Enlistment Act):** लॉर्ड कैनिंग द्वारा लाए गए इस कानून के अनुसार, नए रंगरूटों के लिए आदेश मिलने पर समुद्र पार जाकर भी युद्ध करना अनिवार्य कर दिया गया। तत्कालीन हिंदू मान्यता के अनुसार समुद्र पार करने से व्यक्ति की जाति और धर्म भ्रष्ट हो जाता था (काला पानी का भय)।

(ङ) तात्कालिक कारण: चर्बी वाले कारतूस की चिंगारी

1856 के अंत में पुरानी 'ब्राउन बैस' मस्कट बंदूक के स्थान पर आधुनिक **'एनफील्ड राइफल' (Enfield Rifle P-53)** सेना में शामिल की गई।

- इस राइफल में गोली भरने से पहले उसके कारतूस के ऊपरी सिरे को **दांतों से काटना पड़ता था**।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- जनवरी 1857 में दमदम (बंगाल) के शस्त्रागार में यह बात जंगल की आग की तरह फैल गई कि कारतूस को चिकना और जलरोधी बनाने के लिए जिस ग्रीस का उपयोग किया जा रहा है, वह **गाय और सुअर की चर्बी** से बनाई गई है।
- गाय हिंदुओं के लिए परम पूज्य थी और सुअर मुसलमानों के लिए धार्मिक रूप से निषिद्ध (हराम) था। दोनों समुदायों के सैनिकों को पूर्ण विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ एक सोची-समझी साजिश के तहत उनका धर्म भ्रष्ट कर उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं। बारूद का ढेर पहले से तैयार था, चर्बी वाले कारतूस ने केवल उसमें चिंगारी लगाने का काम किया।

3. विद्रोह की प्रमुख घटनाएं: कालक्रम और प्रसार (1857–1858)

[29 मार्च 1857: बैरकपुर]

मंगल पांडे ने सार्जेंट ह्यूजसन को गोली मारी

|

▼

[24 अप्रैल - 10 मई 1857: मेरठ]

85 सैनिकों का कारतूस छूने से इंकार ⟶ 10 मई को खुला विद्रोह ⟶ "दिल्ली चलो"

|

▼

[11-12 मई 1857: दिल्ली का पतन]

लाल किले पर अधिकार; बहादुर शाह ज़फ़र "शहंशाह-ए-हिंदुस्तानी" घोषित

|

▼

[मई - जून 1857: उत्तर भारत में प्रसार]

कानपुर (नाना साहेब) | लखनऊ (बेगम हज़रत महल) | झांसी (लक्ष्मीबाई) | बिहार (कुंवर सिंह)

1. बैरकपुर में प्रारंभिक विस्फोट (29 मार्च 1857)

कलकत्ता के निकट बैरकपुर छावनी में 34वीं बंगाल नेटिव इन्फैंट्री के युवा ब्राह्मण सिपाही **मंगल पांडे** ने चर्बी वाले कारतूस का प्रयोग करने से साफ इंकार कर दिया। जब एडजुटेंट लेफ्टिनेंट बॉघ और सार्जेंट मेजर ह्यूजसन ने उन पर दबाव बनाया, तो मंगल पांडे ने अपनी बंदूक से उन पर गोली चला दी। मंगल पांडे को पकड़ लिया गया और त्वरित कोर्ट मार्शल के बाद **8 अप्रैल 1857 को उन्हें बैरकपुर में फांसी** दे दी गई। उनकी रेजिमेंट को भंग कर दिया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

2. मेरठ में विधिवत विद्रोह का सूत्रपात (10 मई 1857)

24 अप्रैल 1857 को मेरठ छावनी में तीसरी देशी घुड़सवार सेना (3rd Native Cavalry) के 90 में से 85 सिपाहियों ने कारतूसों को छूने से मना कर दिया। 9 मई को उन्हें सेना से बर्खास्त कर 10-10 वर्ष के कठोर कारावास की सज़ा सुनाई गई और भरी परेड में उनकी वर्दियां फाड़कर बेड़ियां पहनाई गईं।

अगले ही दिन, **10 मई 1857 की शाम**, मेरठ की छावनी में बगावत भड़क उठी। सिपाहियों ने अपने साथियों को जेल से छुड़ाया, यूरोपीय अधिकारियों को मौत के घाट उतारा, हथियार लूट लिए और आधी रात को ही **"दिल्ली चलो"** के नारे के साथ दिल्ली की ओर कूच कर दिया।

3. दिल्ली पर अधिकार और केंद्रीय नेतृत्व की घोषणा (11–12 मई 1857)

11 मई की सुबह मेरठ के विद्रोही सैनिक यमुना पार कर लाल किले पहुंचे। उन्होंने वृद्ध मुग़ल बादशाह **बहादुर शाह ज़फ़र** से विद्रोह का नेतृत्व संभालने की प्रार्थना की। 12 मई को बहादुर शाह को औपचारिक रूप से **'शहंशाह-ए-हिंदुस्तानी'** घोषित किया गया।

यद्यपि सम्राट दुर्बल थे, किंतु उनका नाम भारत की सदियों पुरानी संप्रभुता का प्रतीक था। दिल्ली में वास्तविक सैन्य कमान बरेली से आए सूबेदार **बख्त ख़ान** के हाथों में थी, जिन्होंने सैनिकों और नागरिकों की एक संयुक्त प्रशासनिक परिषद गठित की।

4. विभिन्न प्रमुख केंद्रों में विद्रोह का विस्तार

केंद्र	विद्रोही नेतृत्व	ब्रिटिश दमनकर्ता सेनापति	प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएं एवं संघर्ष
दिल्ली	बहादुर शाह ज़फ़र, जनरल बख्त ख़ान	जॉन निकोलसन, हडसन	सितंबर 1857 में कड़े संघर्ष के बाद निकोलसन ने दिल्ली पर पुनः अधिकार किया (निकोलसन मारा गया)। हडसन ने खूनी दरवाज़े पर सम्राट के दो पुत्रों और एक पोते को गोली मारी। सम्राट को रंगून निर्वासित किया गया।
कानपुर	नाना साहेब, तात्या टोपे,	सर कॉलिन कैंपबेल, मेजर	नाना साहेब ने स्वयं को पेशवा घोषित किया। सतीचौरा घाट और बीबीघर की घटनाएं घटीं। कैंपबेल ने दिसंबर

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

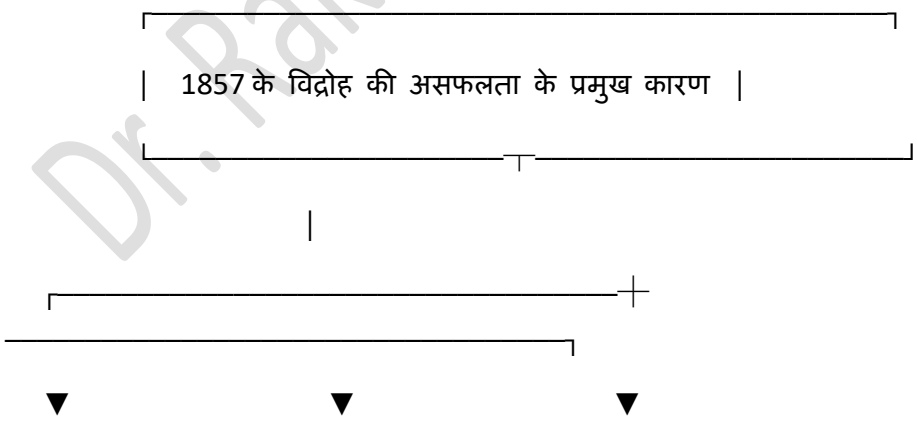
केंद्र	विद्रोही नेतृत्व	ब्रिटिश दमनकर्ता सेनापति	प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएं एवं संघर्ष
	अज़ीमुल्लाह ख़ान	जनरल हैवलॉक	1857 में कानपुर जीता। नाना साहेब नेपाल भाग गए, जबकि तात्या टोपे ने छापामार युद्ध जारी रखा।
लखनऊ	बेगम हज़रत महल, उनके अल्पवयस्क पुत्र बिरजिस क़ाद्र, मौलवी अहमदुल्लाह	सर हेनरी लॉरेंस, जेम्स आउट्रम, कॉलिन कैंपबेल	ब्रिटिश रेजिडेंसी का ऐतिहासिक घेराव हुआ, जिसमें हेनरी लॉरेंस मारा गया। लखनऊ की जनता और ताल्लुकदारों ने बेगम का खुलकर साथ दिया। मार्च 1858 में कैंपबेल ने गोरखा रेजिमेंट की मदद से शहर पर क़ब्ज़ा किया। बेगम नेपाल चली गईं।
झांसी व ग्वालियर	महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे	सर ह्यू रोज़	महारानी ने ब्रिटिश सेना से लोहा लिया और अपने दत्तक पुत्र को पीठ पर बांधकर कालपी पहुंचीं। ग्वालियर में सिंधिया की विद्रोही सेना के साथ मिलकर किले पर अधिकार किया। 17 जून 1858 को कोटा-की-सराय में लड़ते हुए महारानी वीरगति को प्राप्त हुईं। ह्यू रोज़ ने लिखा: *"यहाँ वह सोई हुई है, जो विद्रोहियों में एकमात्र मर्द थी।"*
बिहार (आरा/जगदीशपुर)	बाबू कुंवर सिंह (80 वर्षीय ज़मींदार), अमर सिंह	विलियम टेलर, विंसेंट आयर	कुंवर सिंह ने अदम्य साहस दिखाते हुए जगदीशपुर और आरा में अंग्रेजों को कई बार पराजित किया। गंगा पार करते समय गोली लगने पर उन्होंने अपनी ही बांह काटकर गंगा को

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

केंद्र	विद्रोही नेतृत्व	ब्रिटिश दमनकर्ता सेनापति	प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएं एवं संघर्ष
			समर्पित कर दी थी। अप्रैल 1858 में वे वीरगति को प्राप्त हुए।
फैज़ाबाद	मौलवी अहमदुल्लाह शाह	कॉलिन कैंपबेल	वे अंग्रेजों के सबसे कट्टर शत्रु थे। उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध 'जिहाद' (धर्मयुद्ध) का फतवा दिया और रुहेलखंड में सेनाओं को कड़ी चुनौती दी। अंग्रेजों ने उन पर ₹50,000 का नकद इनाम रखा था।
इलाहाबाद / बनारस	मौलवी लियाक़त अली	कर्नल नील	कर्नल नील ने विद्रोह दबाने के दौरान अमानवीय नरसंहार किया और गांव के गांव फांसी के फंदों पर लटका दिए।

5. विद्रोह की असफलता के मूलभूत कारण

1857 का जन-उभार अपनी व्यापकता और बलिदान के बावजूद ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने में असमर्थ रहा। इसकी असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे:



Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

कोई अखिल भारतीय योजना नहीं थी; दक्षिण भारत, पंजाब व बंगाल शांत; अंग्रेजों के पास टेलीग्राफ, स्टीमर

विभिन्न नेता अपने संकीर्ण व स्थानीय देशी राजाओं (ग्वालियर, पटियाला) व आधुनिक एनफील्ड राइफलें थीं;

हितों के लिए लड़ रहे थे। का अंग्रेजों को खुला समर्थन। विद्रोही पुरानी तलवारों पर निर्भर।

1. **सीमित भौगोलिक विस्तार और स्थानीयता:** यह विद्रोह पूरे भारत में एक साथ नहीं फैला। इसका मुख्य प्रभाव उत्तर भारत (उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली और मध्य भारत) तक ही सीमित रहा। नर्मदा नदी के दक्षिण का भारत (मद्रास और बॉम्बे प्रेसीडेंसी का अधिकांश भाग), पूर्वी भारत (बंगाल, असम) और उत्तर-पश्चिम (पंजाब, सिंध, कश्मीर, राजपूताना) या तो पूरी तरह शांत रहे या उन्होंने अंग्रेजों का सहयोग किया।

2. **देशी नरेशों और शिक्षित वर्ग की गद्दारी/तटस्थता:**

    - भारत के अधिकांश बड़े राजाओं और सामंतों ने संकट की इस घड़ी में देश का साथ देने के बजाय ब्रिटिश हुकूमत का साथ दिया। गवर्नर-जनरल लॉर्ड कैनिंग ने स्वयं स्वीकार किया था:

"यदि पटियाला, जींद, हैदराबाद के निज़ाम और ग्वालियर के सिंधिया इस तूफान में शामिल हो जाते, तो हमें कल ही अपना बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ता। इन शासकों ने तूफान के सामने बांध (Breakwaters) का काम किया।"

    - पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नए भारतीय मध्यम वर्ग, बुद्धिजीवियों और कलकत्ता व बॉम्बे के बड़े व्यापारियों ने इस विद्रोह से दूरी बनाए रखी। उन्हें लगा कि यह विद्रोह सामंती तत्वों की पुरानी व्यवस्था को वापस लाने का प्रतिगामी प्रयास है, जबकि वे ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आधुनिकीकरण के पक्षधर थे।

3. **योग्य केंद्रीय नेतृत्व और समन्वय का अभाव:** विद्रोहियों के पास साहस और शौर्य की कोई कमी नहीं थी, किंतु उनके पास एक सुगठित सैन्य रणनीति और एकीकृत कमान का नितांत अभाव था। नाना साहेब, लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह और बेगम हज़रत महल अपने-अपने क्षेत्रों में तो उत्कृष्ट थे, किंतु एक राष्ट्रीय कमांडर-इन-चीफ के रूप में वे अंग्रेजों के लॉरेंस, हैवलॉक, आउट्रम और कैंपबेल जैसे अनुभवी और एकजुट सेनापतियों के सामने टिक नहीं सके।

4. **संसाधनों, प्रौद्योगिकी और हथियारों की भारी विषमता:**

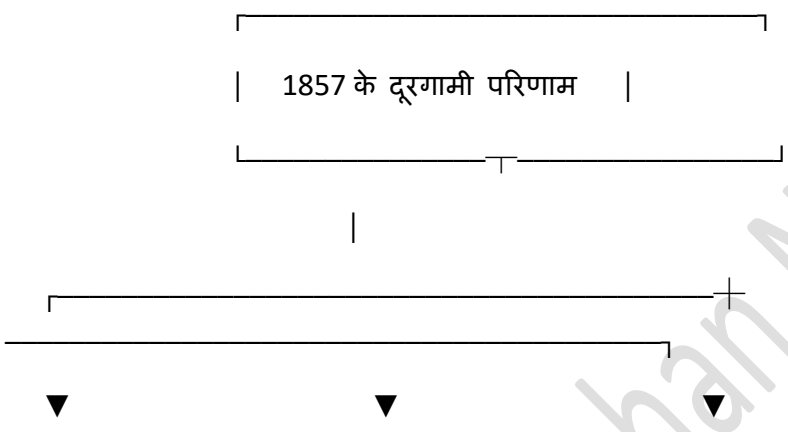
ब्रिटिश सेना अत्याधुनिक हथियारों, तोपखाने और एनफील्ड राइफलों से सुसज्जित थी। इसके विपरीत, विद्रोही कुछ ही दिनों में बारूद की कमी से जूझने लगे और उन्हें तलवारों, भालों और पुरानी बंदूकों से लड़ना पड़ा।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

- **इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ (तार सेवा):** डलहौज़ी द्वारा शुरू किए गए टेलीग्राफ नेटवर्क ने अंग्रेजों के लिए जादुई हथियार का काम किया। ब्रिटिश सेनापति विद्रोही दस्तों की गतिविधियों की सूचना मिनटों में एक-दूसरे तक पहुंचा देते थे। एक ब्रिटिश अधिकारी ने ठीक ही कहा था: *"टेलीग्राफ के तारों ने भारत में हमारी जान बचाई।"*

6. विद्रोह के दूरगामी परिणाम एवं ऐतिहासिक प्रभाव

यद्यपि यह विद्रोह दबा दिया गया, किंतु इसने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिलाकर रख दिया। 1857 के बाद भारत का राजनीतिक, सैन्य और सामाजिक ढांचा हमेशा के लिए बदल गया।



[कंपनी शासन का अंत (1858)] [सैन्य पुनर्गठन: पील आयोग] [सामाजिक-धार्मिक नीतियों में बदलाव]

भारत का शासन सीधे ब्रिटिश ताज (Crown) के अधीन; सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और वायसराय का नया पद

यूरोपीय-भारतीय अनुपात घटाया गया; 'मार्शल व गैर-मार्शल' जातियों का विभाजन; तोपखाना अंग्रेजों के पास

देशी राज्यों का विलय बंद; धार्मिक मामलों में अहस्तक्षेप; 'फूट डालो और राज करो' की आक्रामक नीति

1. ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत (भारत सरकार अधिनियम, 1858)

2 अगस्त 1858 को ब्रिटिश संसद ने **'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1858'** (Act for the Better Government of India) पारित किया:

- भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का 258 वर्षों का शासन समाप्त कर दिया गया। भारत की सत्ता सीधे **ब्रिटिश क्राउन (महारानी विक्टोरिया)** के हाथों में सौंप दी गई।
- 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' और 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' की द्वैध प्रणाली समाप्त कर दी गई। इसके स्थान पर ब्रिटिश कैबिनेट के एक सदस्य को **'भारत सचिव' (Secretary of State for India)** नियुक्त किया गया, जिसकी सहायता के लिए 15 सदस्यीय 'इंडिया काउंसिल' बनाई गई।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- भारत के गवर्नर-जनरल को अब ब्रिटिश क्राउन का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि माना गया और उसे **'वायसराय' (Viceroy)** की नई उपाधि दी गई। **लॉर्ड कैनिंग** भारत के अंतिम गवर्नर-जनरल और प्रथम वायसराय बने।

2. महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र (1 नवंबर 1858)

इलाहाबाद में आयोजित एक भव्य दरबार में लॉर्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया का शाही घोषणा-पत्र पढ़कर सुनाया, जिसे भारतीय इतिहास में औपनिवेशिक शासन का **'मैग्ना कार्टा'** कहा गया। इसमें वचन दिया गया कि:

- भारतीय राजाओं के क्षेत्रों का अब ब्रिटिश साम्राज्य में कोई विस्तार या विलय नहीं किया जाएगा।
- **'व्यपगत का सिद्धांत' (दत्तक पुत्र निषेध) पूरी तरह समाप्त कर दिया गया** और देशी राजाओं को अपने उत्तराधिकारी गोद लेने की पूर्ण मान्यता दी गई।
- ब्रिटिश सरकार भारतीयों के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी।
- सभी नागरिकों को, बिना किसी जाति, रंग या धर्म के भेदभाव के, उनकी योग्यता के आधार पर सरकारी सेवाओं में अवसर दिया जाएगा।

3. सेना का आमूलचूल पुनर्गठन (पील कमीशन की रिपोर्ट)

1857 के झटके से भयभीत ब्रिटिश सरकार ने सेना में भारतीयों की शक्ति को पंगु बनाने के लिए 1859 में **'पील आयोग' (Peel Commission)** की सिफारिशों को लागू किया:

- **यूरोपीय सैनिकों का अनुपात बढ़ाया गया:** बंगाल सेना में यूरोपीय और भारतीय सैनिकों का अनुपात 1:2 और मद्रास व बॉम्बे में 1:3 कर दिया गया।
- **रणनीतिक पदों पर नियंत्रण:** तोपखाना, गोला-बारूद के कारखाने और उन्नत शस्त्रागार पूरी तरह से यूरोपीय सैनिकों के हाथों में सुरक्षित कर दिए गए; भारतीयों को इनसे दूर रखा गया।
- **'मार्शल' और 'गैर-मार्शल' की विभाजनकारी नीति:** जिन क्षेत्रों (अवध, बिहार, रुहेलखंड) के सैनिकों ने विद्रोह में भाग लिया था, उन्हें 'गैर-मार्शल' घोषित कर सेना में उनकी भर्ती लगभग बंद कर दी गई। इसके विपरीत, जिन कौमों (सिख, गोरखा, पठान) ने विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों का साथ दिया था, उन्हें 'मार्शल रेस' (लड़ाकू जातियां) घोषित कर बड़े पैमाने पर सेना में भर्ती किया गया।
- रेजीमेंटों का गठन धर्म और जाति के आधार पर किया गया ताकि सैनिकों में भविष्य में कभी कोई साझा राष्ट्रीय भावना न पनप सके।

4. 'फूट डालो और राज करो' (Divide and Rule) की आक्रामक नीति

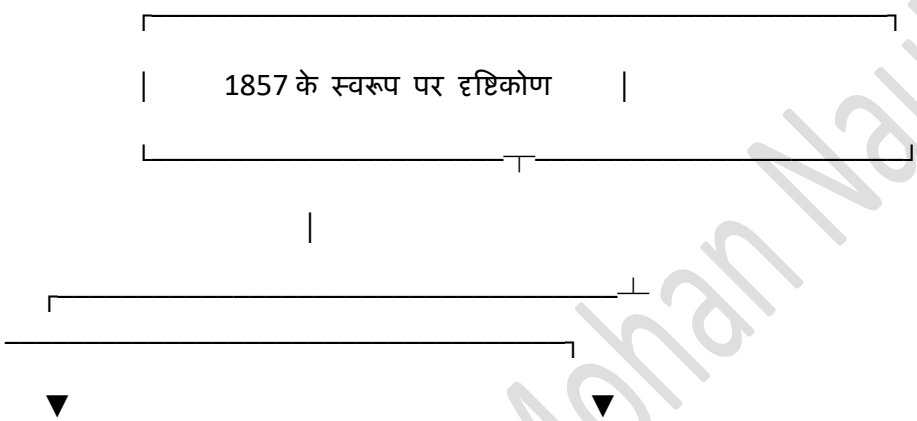
Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1857 के विद्रोह की सबसे अद्भुत विशेषता यह थी कि इसमें हिंदू और मुस्लिम कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे। हिंदू सैनिकों ने मुग़ल सम्राट को अपना नेता माना और नाना साहेब के मुख्य सलाहकार अज़ीमुल्लाह ख़ान तथा रानी लक्ष्मीबाई के तोपची ग़ुलाम गौस ख़ान जैसे वीरों ने अपनी वफादारी का परिचय दिया।

अंग्रेजों ने इस साझी एकता को अपने साम्राज्य के लिए सबसे बड़ा खतरा माना। 1858 के बाद ब्रिटिश सरकार ने योजनाबद्ध तरीके से हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अविश्वास, सांप्रदायिकता और वैमनस्य के बीज बोने शुरू किए, जिसकी परिणति अंततः 1947 के रक्तरंजित भारत-विभाजन में हुई।

7. विद्रोह का ऐतिहासिक स्वरूप: 'सिपाही विद्रोह' या 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'?

1857 के विद्रोह के वैचारिक स्वरूप को लेकर इतिहासकारों में गहरा मतभेद रहा है:



[औपनिवेशिक दृष्टिकोण: संकीर्ण]

- जॉन लॉरेंस व सीले: "विशुद्ध सिपाही गदर"
- टी. आर. होम्स: "बर्बरता बनाम सभ्यता का द्वंद्व"
- जेम्स आउट्रम व टेलर: "हिंदू-मुस्लिम षड्यंत्र"

[राष्ट्रवादी दृष्टिकोण: व्यापक]

- वी. डी. सावरकर: "भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम"
- डॉ. एस. एन. सेन: "धर्म की लड़ाई के रूप में शुरू, स्वतंत्रता संग्राम में परिणत"

- **औपनिवेशिक दृष्टिकोण:** सर जॉन लॉरेंस और सीले जैसे ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसे केवल एक "स्वार्थी और अनुशासनहीन सिपाहियों का गदर" (A wholly unpatriotic and selfish Sepoy Mutiny) सिद्ध करने का प्रयास किया, जिसका कोई राष्ट्रीय आधार नहीं था।
- **राष्ट्रवादी दृष्टिकोण:** 1909 में विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर) ने अपनी अमर पुस्तक *'द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857'* में सर्वप्रथम इसे **"भारत का सुनियोजित प्रथम स्वतंत्रता संग्राम"** घोषित किया। उन्होंने सिद्ध किया कि यह केवल कारतूसों की लड़ाई नहीं थी, बल्कि अपनी स्वधर्म और स्वराज्य की रक्षा का राष्ट्रीय महायज्ञ था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

- **आधुनिक संतुलित दृष्टिकोण:** प्रख्यात इतिहासकार डॉ. एस. एन. सेन ने अपनी आधिकारिक कृति *'Eighteen Fifty-Seven'* में अत्यंत यथार्थवादी निष्कर्ष दिया:

"जो संघर्ष धर्म की रक्षा के लिए एक सैन्य विद्रोह के रूप में प्रारंभ हुआ था, उसने शीघ्र ही एक व्यापक जन-विद्रोह का रूप धारण कर लिया और वह विदेशी सत्ता से मुक्ति के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में समाप्त हुआ।"

1857 का महासंग्राम भले ही सैन्य दृष्टि से पराजित हो गया हो, किंतु उसने भारतीयों के हृदय से विदेशी हुकूमत की अजेयता का मिथक हमेशा के लिए तोड़ दिया। इसी महाक्रांति के भग्नावशेषों से उस आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ, जिसने आगे चलकर महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस और भगत सिंह के नेतृत्व में 1947 में ब्रिटिश साम्राज्य के सूर्य को हमेशा के लिए अस्त कर दिया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal